ISSN 2455-0310

1.5

LISTED UNDER
UGC APPROVED LIST OF JOURNALS

DRJI

ISI Indexing | JIF Evaluation

JIF

JIFACTOR

ISSN 2455-0310

TRANSFRAME

A Bilingual, Bimonthly Multidisciplinary International e-Journal

VOLUME 1, ISSUE 5

MAY-JUNE 2016

TRANSFRAME
E– Journal

VOLUME 1, ISSUE 5

2016

CLICK ON ARTICLES TO READ

STUDY

4 उपलब्ध ऑनलाइन प्रणालियाँ : एक सर्वेक्षण - प्रफुल्ल भगवान मेश्राम, इंद्र कुमार पाण्डेय, पंकज कुमार मिश्र, अरुण पाण्डेय

8 फ़िल्मों के मूल्यांकन के आधार - प्रवीण सिंह

12 हिंदी सिनेमा में दलित-आदिवासी प्रस्तुति की सीमाएँ - सुनीता

PERSONALITY

19 भारतीय सिनेमा की एक प्रयोगशाला... राम गोपाल वर्मा - विवेक कुमार

CRITICAL EVALUATION

22 स्त्री विमर्श का अगला पड़ाव है 'की एंड का'- रुद्रभानु प्रताप सिंह

24 भट्ट कैंप के खोखले दावों का पुलिंदा है 'लव्ह गेम्स' - रुद्रभानु प्रताप सिंह

RESEARCH

26 Correlation between Translation and Interpretation : Dr. Uttam B. Parekar

37 मराठी क्रियारूप विश्लेषक प्रणाली का विकास- प्रफुल्ल भगवान मेश्राम

CREATION

43 लेखनी - Hrithik

44 तुलिका - अमित मनोज

45 कैमरा - Praveen Singh

INTERVIEW

46 "Mera Desh Mera Dharm" changed my life: Ratan Gahlot – Md. Iqbal Ahmed

47 सुविख्यात भाषाविज्ञानी एवं अनुवादशास्त्री प्रो.कृष्ण कुमार गोस्वामी के साथ बातचीत – मेघा आचार्य

INTERVIEW

49 अवधी लोकगीत का भावानुवाद – ट्रांसफ्रेम

LANGUAGE

51 बहुभाषिक भारत बनाम 'डिजिटल इंडिया' - अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी

57 भारत बनाम इंडिया - प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी

RESEARCH

59 जनपद भिण्ड (म0प्र0) में सिंचाई सुविधाओं का विकास एवं नियोजन : एक भौगोलिक विश्लेषण डॉ0 पुष्पहास पाण्डेय शिवम् वर्मा

65 Attitude towards information and communication technology of secondary school teachers with respect to their age -Dr. Sunita Arya

TRANSFRAME
Bilingual, Bimonthly E– Journal

EDITORIAL

As Transframe publishes the fifth number of its first volume it seems appropriate to reflect briefly on its history and scope. Since its inaugural issue in 2015, the magazines's rationale has always been to privilege work on 'new forms of cinema and translation practice'; thus the articles we have published have addressed a variety of cinemas and translations, but their principal focus has been on developing new approaches .

Thus, in scanning the four issues to date it is possible, without wishing to ignore the range and reach of the articles published, to identify some key recurring theoretical questions: these include the impact of digital technologies on translation and narrative forms, issues of the national and the transnational, and a concern with formations of gender and sexuality in contemporary cinemas.

The articles in this issue engage with similar themes.Thank you for reading TRANSFRAME.

Editor
contact@transframe.in

PUBLISHER

Praveen Singh Chauhan

204 Shedge House, Versova

Andheri (w) Mumbai 400061

T +91 9763706428

EDITOR

Megha Acharya

Praveen Singh Chauhan

LAYOUT & DESIGN

Praveen & Megha

©All Rights Reserved

The publisher regret that they can not accept liability for error or ommisions contained in this publication, however caused. The opinions and views contained in this publication are not necessarily those of the publishers or editors. No part of this publication or any part of the contents there of may be reproduced or transmitted in any form without the permission of publishers in writing. An exemtion is hereby granted for extracts used for the purpose of fair review.

GO DIGITAL, GO PAPERLESS, SAVE TREES, SAVE WATER

FILM & Translation STUDIES
अध्ययन

उपलब्ध ऑनलाइन प्रणालियाँ

एक सर्वेक्षण

प्रस्तुत आलेख में वैश्विक परिप्रेक्ष्य में विकसित प्रमुख मशीनी अनुवाद प्रणालियाँ, रोबोटिक्स आदि के संदर्भ में सर्वेक्षण किया गया है जिसमें कौन-कौन सी प्रणालियाँ विकसित हुई है और उसका क्या उपयोग है आदि को स्पष्ट किया गया है।

प्रफुल्ल भगवान मेश्राम,
इंद्र कुमार पाण्डेय,
पंकज कुमार मिश्र,
अरुण पाण्डेय

प्रस्तावना

एक ओर भाषा संपूर्ण मानव जीवन में वैयक्तिक और सामाजिक अस्तित्व से जुड़ी है जो मानव की सभ्यता एवं संस्कृति की परिचायक होती है तो दूसरी ओर प्रौद्योगिकी अपने मौलिक विकास में मनुष्य के इतिहास, अवसर और आवश्यकतानुरूप शोध व अविष्कार करने की क्षमता से जुड़ी है। भाषाविज्ञान भाषा का एक व्यवस्थित, संरचित, वस्तुनिष्ठ अध्ययन करता है। ‘भाषाविज्ञान’ और ‘प्रौद्योगिकी’ के योग से नए विषय ‘भाषा प्रौद्योगिकी’ (Language Technology), संगणकीय भाषाविज्ञान (Computational Linguistics) के रूप में प्रकट हुए हैं, जो भाषाविज्ञान की अनुप्रयुक्त शाखा माने जाते हैं। ‘भाषा प्रौद्योगिकी’ एक अंतरानुशासनिक विषय है जिसके केंद्र में ‘भाषा’ शब्द को भाषाविज्ञान से लिया गया है, वही ‘प्रौद्योगिकी’ भूमंडलीकरण की उपज उपभोक्तावादी प्रवृत्ति के माँग की देन है।

‘आवश्यकता अविष्कार की जननी है’ यही बात भाषा प्रौद्योगिकी के अवधारणा पर भी लागू होती है। भाषा को प्रौद्योगिकी से जोड़ने की अवधारणा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद शुरू होती है, जब मित्र राष्ट्र और सौराष्ट्र के सैनिकों को प्रशिक्षण देने की बात आती है तो भाषा एक समस्या उत्पन्न कर देती है। तब से ही भाषा को मशीन से जोड़कर उपयोग में लाने की अवधारणा जन्म लेती है।

कंप्यूटर के अविष्कार के साथ ही उसके माध्यम से अनुवाद कराए जाने की बात सर्वप्रथम एंड्रयू डी.बूथ (Andrew D. Booth) और वारेन विवर (Waren Weaver) ने की। इसके बाद सन् 1949 में ‘विवर’ द्वारा इस संबंध में रॉकफेलर फाउंडेशन (Rockefeller Foundation) को एक ज्ञापन लिखा जाता है। इसी समय से मशीनी अनुवाद की नींव पड़ती है जो भाषा के प्रयोग को मशीन की सहायता से व्यावहारिक जीवन में उतारने का एक प्रारंभिक प्रयास के रूप में सामने आता है; और यही से भाषा-प्रौद्योगिकी का उद्भव माना जाता है।

भाषा प्रौद्योगिकी के माध्यम से प्राकृतिक भाषाओं को मशीन (कंप्यूटर) में स्थापित करने का कार्य किया जा रहा है जिसमें देश और विदेश के कई संस्थान कार्यरत है। भाषा एक जटिल संरचना होने के कारन इसे मशीन में स्थापित करना बहुत ही कठिन कार्य है। प्रस्तुत आलेख में वैश्विक परिप्रेक्ष्य में विकसित प्रमुख मशीनी अनुवाद प्रणालियाँ, रोबोटिक्स आदि के संदर्भ में सर्वेक्षण किया गया है जिसमें कौन-कौन सी प्रणालियाँ विकसित हुई है और उसका क्या उपयोग है आदि को स्पष्ट किया गया है।

<u>**Georgetown-IBM Experiment-**</u> यह मशीन ट्रांसलेशन और NLP का सबसे पहला टूल है जो 7 जनवरी 1954 में Georgetown और IBM के पारस्परिक सहयोग से विकसित किया गया था। इस टूल की सीमा यह थी की यह केवल 60 Russian वाक्यों को अंग्रेजी वाक्यों में अनुवाद करने के लिए ही उपयोगी था।

इसमें केवल 6 नियम और शब्दावली में 250 शाब्दिक अर्थ था तथा राजनीतिक, कानूनी, गणित और विज्ञान के विषयों को ही लिया गया था। इस टूल में लिंग्विस्टिक्स का मुख्य कार्य Paul Garvin ने किया था जो एक अच्छे russian भाषा वैज्ञानिक थे। यह टूल एक नियम और शब्द कोश आधारित था।

Student– यह (गणित संबंधी)एक समस्या निरूपण प्रणाली है जो सन् 1964 में Danieal Babrow ने LISP नामक प्रोग्रामिंग भाषा में विकसित की जो मुख्यतः बीज गणतीय (Case Study Based) समस्याओं के समाधान के लिए प्रयोग में लाया जाता था।

CULT(*CHINESE UNIVERSITY LANGUAGE TRANSLATOR*) - मशीनी अनुवाद के विकास को चीन के Hong- Kong विश्वविद्यालय एक अलग ढंग से ही लिया और उस पर कार्य करना प्रारंभ किया। इसने **CULT(*CHINESE UNIVERSITY LANGUAGE TRANSLATOR*)** नामक प्रणाली का विकास सन् 1972 ई में किया। डॉ. Chan के अनुसार **CULT** के द्वारा चीनी (शोध पत्रिकाओं) से अंग्रेजी में किया गया अनुवाद मानो जैसे कि पहले से प्री-एडिटिंग होता है। इस प्रणाली को गणित और भौतिकी से संबंधित चीनी शोध पत्रिकाओं का अंग्रेजी में अनुवाद करने के लिए विकसित किया गया था।

SYSTRAN- जार्ज टाउन विश्वविद्यालय द्वारा रूसी-अंग्रेजी अनुवाद के लिए सन् 1964 में विकसित (GAT) प्रणाली को सन् 1976 में इसे SYSTRAN के रूप में परिवर्तित करके व्यवसायिक रूप दिया गया। नासा ने अपोलो-सोयूज के सहयोग से संबंधित सामग्री का अनुवाद इसी प्रणाली की सहायता से किया था। इसे विश्व की सर्वप्रथम व्यावसायिक मशीनी अनुवाद प्रणाली के रूप में ख्याति मिली।

METAL- METAL मशीन अनुवाद प्रणाली का विकास University of Texas (1980) में किया गया था, जोकि Linguistic Research Center and Siemens का एक साझा project था। इस प्रणाली से जर्मन से अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया जा सकता है।

EUROTRA- मशीनी अनुवाद के मांग को देखते हुए यूरोपियन कम्यूनिटी ने EUROTRA (1978-1992) नामक एक प्रोजेक्ट बनाया जो कि मशीनी अनुवाद के क्षेत्र में बहुत ही सफल रहा। वर्तमान समय में इस Project के अंतर्गत 9 भाषाएं तथा 72 भाषाओं के जोड़े हैं। इस प्रणाली में तीन अनुवादिक क्रियाएँ होती हैं 1- Analysis, 2- Transfer, 3- Synthesis, इसकी डिज़ाइन स्थानांतरण के आधार पर की गई है।

Babylon- यह एक डिजिटल शब्द कोश और अनुवाद टूल्स है। Babylon Private Limited नामक संस्था ने इसका पहला संस्करण 25 सितंबर 1997 में लांच किया था। इसमें मुख्यतः पाठ अभिज्ञान और अनुवाद को ही ध्यान दिया गया। इसमें 400 वर्ग शामिल है, जिसमें कुछ इस प्रकार है- कला, व्यापार, कंप्यूटर, स्वास्थ्य, कानून, मनोरंजन, खेल आदि। यह टूल पाठ से वाक् पद्धति पर भी आधारित है, जिससे शब्दों के सही उच्चारण को सुनने और समझने में यह उपयोगी है और इसमें 21 प्रकार की भाषाओं (English, Arabic, Simplified Chinese, TraditionalChinese, Czech, Danish, Dutch, French, German, Greek, Hebrew, Italian, Japanese, Korean, Norwegian, Polish,Portuguese, Russian, Spanish, Swedish and Turkish) के शब्द-कोश भी निहित है।

Google Translator - यह एक फ्री बहुभाषीय सांख्यिकी आधारित Machine Translator है जो गूगल के द्वारा 22 अक्टूबर 2007 में विकसित किया गया है, इससे पहले गूगल 2006 में नियम आधारित Machine Traslator विकसित किया था जो सीमित वाक्यों तक की सफल था। यह Multi OS के लिए चाहे मोबाइल OS हो या WINDOW, MAC या फिर LINUX सभी के लिए Suitable है।

Cortana - यह एक IPA (intelligent personal assistant) एप्लीकेशन है, जिसे माइक्रोसॉफ्ट ने 2014 में Windows Phone 8.1, Windows 10 Mobile, Microsoft Band, Xbox One, Windows 10, IOS and Android आदि ऑपरेटिंग Systems के लिए बनाया है, जिसका निर्माण c/c++ प्रोग्रामिंग में किया गया है। Cortana, वर्तमान में अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, इतालवी, स्पेनिश, चीनी और जापानी भाषा संस्करण में उपलब्ध है। Cortana हमारे सभी पसंदीदा स्थानों को आटोमेटिक Google मैप में Save कर देता है।

GATE- यह एक Open Sourse टूल बॉक्स है जो प्राकृतिक भाषा संसाधन और भाषा अभियांत्रिकी के लिए उपयोगी है। इसे Sheffield विश्वविद्यालय के कंप्यूटर साइंस के एक ग्रुप ने 1995 में Python नामक कंप्यूटर भाषा में विकसित किया था। यह Gui Envirment प्रदान करता है जो कि R & D (Research and Development) और भाषा संसाधन Software विकसित करने में उपयोगी होती है। इसमें अंग्रेजी, स्पेनिश, चीनी, अरबी, बल्गेरियाई, फ्रेंच, जर्मन, हिन्दी, इतालवी, सिबुआनो, रोमानियाई, रूसी आदि भाषाएँ शामिल हैं। यह दिए गए Extensions को इनपुट की तरह स्वीकार करता है जैसे, TXT, HTML, XML, Doc, PDF Documents, And Java Serial, Postgre SQL, Lucene, Oracle Databases।

WordNet - यह अंग्रेजी भाषा के लिए शाब्दिक डाटाबेस है जिसमें संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया , विशेषण और अव्यय आदि अपने पर्यायवाची शब्दों (Synset) के साथ आपस में जुड़े रहते हैं, जिसमें प्रत्येक एक अलग अवधारणा व्यक्त करतीं हैं। इसका प्राथमिक उपयोग स्वत: पाठ विश्लेषण और कृत्रिम बुद्धि अनुप्रयोगों में है।इसे प्रिंसटन विश्वविद्यालय के संज्ञानात्मक विज्ञान के मनोविज्ञान के प्रोफेसर जॉर्ज मिलर आर्मिटेज की दिशा में 1985 में बनाया गया था। जॉर्ज मिलर और क्रिस्टियन फेल्ल्बौम को इस बड़े उपलब्धि के लिए के 2006 Antonio Zampolli पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। इसमें शब्द व्युत्पत्ति या शब्दों के उच्चारण के बारे में जानकारी शामिल नहीं है और यह उपयोग के बारे में केवल सीमित जानकारी शामिल है

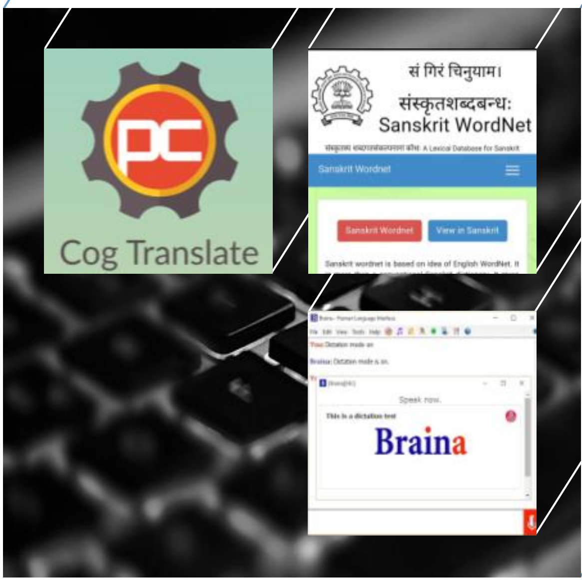

Braina- यह एक IPA (intelligent personal assistant)एप्लीकेशन है जिसे Brainasoft नामक कंपनी ने microsoft विंडो के लिए विकसित किया है जिसमें Natural language interface और speech Recognition के सहयोग से उपयोगकर्ता English Command (या Voice Command) के माध्यम से कंप्यूटर में विभिन्न Task कर सकते हैं। यह चाहे पाठ या वाक् हो, इंटरनेट से Information खोजना हो, मनपसंद गाना या विडियो देखना हो , अलार्म और Remainder Set करना हो, किताब पढ़ना हो आदि के लिए उपयोगी है।

AIBO- AIBO (**A**rtificial **I**ntelligence Ro**BO**t , जापान में AIBO का मतलब है *"Companion" हिंदी अर्थ है "साथी")* एक सोनी कंपनी के द्वारा निर्मित रोबोट तैयार किया गया है जो पालतू जानवरों की एक प्रतिष्ठित श्रृंखला है। सोनी ने 1998 के मध्य में एक प्रोटोटाइप रोबोट की घोषणा की गई थी। AIBO के पास क्षमता होती है कि वह मनुष्य से पालतू जानवरों की तरह बातचीत कर सके। Sony ने AIBO को एक स्वायत्त रोबोट के रूप में वर्गीकृत किया क्योंकि इसके अन्दर क्षमता सिखाने की, बाहरी उत्तेजनाओं के जवाब में अपने दम पर कार्य करने की क्षमता और परिपक्वता है। AIBO के पास मस्तिष्क(CPU)है जो पुरे अंग को कंट्रोल कर सके और सेंसर भी है।

Jabberwacky(1981) - यह एक चैटिंग Robot है जिसे 'Chatbot' या 'Chatterbot' भी कहा जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य है कि एक रोचक, मनोरंजक और विनोदी तरीके से प्राकृतिक मानव चैट को अनुकरण करना है। यह मानव बातचीत के माध्यम से एक कृत्रिम बुद्धि बनाने में एक प्रारंभिक प्रयास है।

Cog- यह Massachusetts Institute of Technology के द्वारा निर्मित एक रोबोटिक्स प्रोजेक्ट था। यह Hypothesis के आधार पर था जैसेकि शिशु अपने माता- पिता और लोगों से बातचीत से अनुभव प्राप्त करता है उसी प्रकार COG भी बुद्धि का विकास करके मानव की तरह काम कर सके। इस प्रोजेक्ट का यह इरादा था कि रोबोट सामाजिक रूप को जान सके। 2003 में कुछ कारण बस, इस परियोजना के सभी विकास

बंद कर दिया गया था। Humanoid रोबोट बनाने के लिए एक प्रेरणा पुस्तक “Philosophy In The Flesh” Written By *Mark Johnson and George Lakoff* से समझा जा सकता है।

JIBBIGO

Jibbigo- यह एक Offline भाषा अनुवाद एप्लीकेशन है जिसे *limited liability company* और *Drl Alex Waibel* (कार्नेगी मेलॉन में एक प्रोफेसर) के द्वारा निर्मित हुआ था। Jibbigo एक ऑफ़लाइन आवाज अनुवादक है और फोन या डाटा कनेक्टिविटी की जरूरत नहीं है कार्य करने के लिए है। स्पेनी, अंग्रेजी Jibbigo को पहले ऑफ़लाइन भाषण अनुवाद एप्लीकेशन के रूप में सितंबर, 2009 में जारी किया गया था। IOS पर, यह नेत्रहीन प्रयोक्ताओं के लिए भी उपलब्ध है।

उपसंहार

कंप्यूटर के अविष्कार के साथ ही इसके माध्यम से अनुवाद कार्य करने की बात शुरू हुई थी और वर्तमान में देखा जाए तो आज प्राकृतिक भाषा संसाधन के क्षेत्र में देश विदेश में कई संस्थान कार्यरत हैं। इसमें अभी तक आंशिक सफलता प्राप्त हुई है, अभी पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। चाहे वह मशीनी अनुवाद हो, रोबोटिक्स हो या स्पीच रेकोग्निशन (Speech Recognition) जिसका मुख्य कारण मानव भाषा में व्याप्त जटिलता है। इस विषय में और अधिक सफलता प्राप्त करनी हो तो इसमें कई विषय क्षेत्रों से संबंधित (भाषाविज्ञान, संगणक विज्ञान, मनोविज्ञान आदि) विद्वानों को एक साथ मिलकर काम करने की जरुरत है।

संदर्भ-सूची

- मल्होत्रा, विजय कुमार. (संस्करण 1998), कंप्यूटर के भाषिक अनुप्रयोग, दरियागंज, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन
- https://en|wikipedia|org/wiki/Georgetown-IBM_experiment
- https://www.researchgate.net/publication/239590176_MACHINE_TRANSLATION_OF_CHINESE_MATHEMATICAL_ARTICLES

FILM & Translation STUDIES

फ़िल्मों के मूल्यांकन के आधार

अध्ययन

एक रिपोर्ट के अनुसार एक औसत भारतीय परिवार प्रतिदिन लगभग सात घंटे टेलीविज़न देखते हैं। और यह चलचित्र देखने के लिए बहुत ज्यादा समय हैं लेकिन तब भी हम ज़्यादातर असमीक्षात्मक ढंग से ही देखते हैं। हम यह कभी कभार ही सोचते हैं कि वो हमारे व्यक्तित्व पर किस प्रकार से असर कर रही हैं, किस तरह हमारे मूल्यों को आकृति दे रही हैं। प्रस्तुत आलेख फ़िल्मों के मूल्यांकन के आधार पर केंद्रित है।

हम यह कभी कभार ही सोचते हैं कि फ़िल्में हमारे व्यक्तित्व पर किस प्रकार से असर कर रही हैं, किस तरह हमारे मूल्यों को आकृति दे रही हैं। प्रस्तुत आलेख फ़िल्मों के मूल्यांकन के आधार पर केंद्रित है।

सामान्य रूप से फ़िल्म कैसी है, ये हम निम्न कारकों के आधार पर तय कर सकते हैं :-

मनोरंजन (Enjoyment)– फ़िल्म कितनी मनोरंजक है ?
कहानी (Story) – क्या कहानी रोचक है, क्या सभी चरित्र बढ़िया तरीके से रचे गये हैं?

तकनीकी (Technical)– फ़िल्म का संपादन, निर्देशन और ध्वनि।

अभिनय (Acting)– अभिनय यथार्थपूर्ण

दृश्य (Visuals)– सिनेमैटोग्राफी और विशेष प्रभाव।

प्रभाव (Impact) – क्या यह आपको हंसाती/ रुलाती/ भावुक करती है?

रफ़्तार (Pace)– समय सीमा के अंदर उपयुक्त गति।

वैधता (Validity)- फ़िल्म में दिखाया गया वातावरण, क्या यह विश्वसनीय है?

मनोदशा (Mood)- संगीत, वेश-भूषा, कला विन्यास।

पुनरावलोकन (Re-watch) क्या फ़िल्म दुबारा देखी जाने लायक है?

प्रवीण सिंह चौहान
मुंबई

किसी भी फ़िल्म का शोध परक मूल्यांकन निम्न आधारों पर किया जा सकता है-

1. फोटोग्राफी (Photography)
2. गति (Movement)
3. संपादन (Editing)
4. ध्वनि (Sound)
5. अभिनय (Acting)
6. नाटकीयता (Drama)
7. कहानी (Story)
8. लेखन (Writing)
9. वैचारिकी (Ideology)

फोटोग्राफी के अंतर्गत निम्न आधार आते हैं:-

- शॉट्स
- एंगल्स
- लाइट एंड डार्क
- कलर
- फ्रेमिंग
- कंपोज़ीशन और डिजाइन
- टेरिटोरियल स्पेस
- प्रोक्सेमिक पैटर्न

शॉट्स :- शॉट्स के अंतर्गत विषय वस्तु की मात्रा आती है जो स्क्रीन के फ्रेम में सम्मिलित होती है। सिनेमा में विभिन्न प्रकार के शॉट्स होते हैं। उनमे से ज़्यादातर निम्न छः आधारभूत वर्गीकरण में आ जाते हैं-

एक्सट्रीम लॉन्ग शॉट
लॉन्ग शॉट
फुल शॉट
मीडियम शॉट
क्लोज अप शॉट
एक्सट्रीम क्लोज अप शॉट

एंगल्स :- मुख्यतः सिनेमा में पाँच आधारभूत एंगल्स होते हैं-

बर्ड्स आई व्यू
हाई एंगेल
आई लेवल
लो एंगल
आब्लिक एंगल

इसके अतिरिक्त भी अन्य कई मध्यवर्ती प्रकार के एंगल्स होते हैं जो उपरोक्त एंगल्स के मध्य में आते हैं।

लाइट एंड डार्क :- आमतौर पर कहा जाए तो सिनेमैटोग्राफर ही फोटोग्राफी की गुणवत्ता और फ़िल्म की लाइटिंग की व्यवस्था और नियंत्रण के लिए ज़िम्मेवार होता है। लाइट बहुत ही सूक्ष्म तरीके से प्रयोग मे लाया जा सकता है। लाइट और डार्क का अपना एक प्रतीकात्मक संबंध है। फ़िल्मों मे थ्री पॉइंट लाइटिंग का प्रयोग सर्वाधिक होता है। इसके अलावा लो की और हाई की लाइटिंग के अलग प्रभाव होते हैं।

कलर :- कलर फ़िल्म मे अवचेतन तत्व के रूप में कार्य करता है। यह अपने आप मे जबर्दस्त भावनात्मक प्रभाव लिए हुए होता है। यह मूड को दिखाता है। कलर का प्रयोग प्रतीकात्मक उद्देश्य के लिए भी किया जाता है। कलर का टेंपरेचर विभिन्न मनोभावों और सांस्कृतिक प्रभावों को दिखाता है।

फ्रेमिंग :- प्रत्येक मूवी इमेज स्क्रीन के फ्रेम द्वारा बनती है जो फ़िल्म की दुनिया का निर्माण करती है, तथा अंधेरे सिनेमा हाल को वास्तविक दुनिया से अलग कर देती है। प्रत्येक फ्रेम में चार प्रमुख सेक्शन होते हैं- सेंटर, टॉप, बॉटम, और साइड्स । जहां पर आबजेक्ट्स और कैरेक्टर को प्लेस कर कई तरह से सिंबोलीक उद्देश्य के लिए फ्रेम का प्रयोग किया जाता है।

कंपोज़ीशन और डिजाइन :- फ्रेम के विभिन्न तत्वो को एक क्रम मे व्यवस्थित करना जिससे वो समग्रता का बोध कराये। सिमीट्रिकल ,असिमीट्रिकल और सेंटर्ड कंपोज़ीशन के प्रकार हैं। लाइन , कलर और टेक्सचर द्वारा फ्रेम इलीमेंट्स को कम्पोजीट किया जाता है।

टेरिटोरियल स्पेस :- किसी भी फ्रेम में टेरिटोरियल स्पेस को ज्ञात मनोवैज्ञानिक ग्रंथी के रूप में बदला जा सकता है। उदाहरण के लिए किसी फ्रेम से कोई आकृति आउट होती है। वो स्पेस खाली हो जाता है। उसे या तो हल्की पैनिंग द्वारा बैलेंस किया जा सकता है या उसे वैसे ही खाली रहने दिया जा सकता है। दोनों के अलग अलग मनोवैज्ञानिक प्रभाव होंगे।

प्रोक्सेमिक पैटर्न :- दिये गए स्पेस से आर्गेनिज़्म का रिलेशन। समान्यतया लोग दिये गए स्पेस का चार प्रमुख प्रोक्सेमिक पैटर्न में प्रयोग करते हैं।–

- इंटीमेट
- पर्सनल
- सोसल
- पब्लिक

मूवमेंट के अंतर्गत निम्न आधार आते हैं:-

- कायनेटिक्स
- कैमेरा मूवमेंट
- मैकेनिकल डिस्टोर्शन ऑफ

कायनेटिक्स :- इमेज की तरह मोशन या गति भी हाई स्टायलाइज्ड या लिटरल या कंक्रीट हो सकता है। सभी काइनेटिक आर्ट्स में हम विस्तृत रूप में कई मूवमेंट्स पाते हैं जो रेयालिस्टिक से लेकर फोर्मली अब्स्ट्रक्ट तक होता है। यह स्टायलिश स्पेक्ट्रम फ़िल्मों में भी देखा जा सकता है।

कैमेरा मूवमेंट :- सात आधारभूत कैमरा मूवमेंट इस प्रकार हैं-

1. पैंस
2. टिल्ट्स
3. क्रेन शॉट्स
4. डॉली शॉट्स
5. जूम शॉट्स
6. हैंड हेल्ड शॉट्स
7. एरियल शॉट्स

मैकेनिकल डिस्टोर्शन ऑफ मूवमेंट :- फ़िल्म का मूवमेंट दृश्यिक भ्रम है। वर्तमान मे कैमरा 24 फ्रेम प्रति सेकंड के दर से मूवमेंट को रिकॉर्ड करते हैं। लेकिन कुछ परिवर्तन द्वारा इसमे मैकेनिकल डिस्टोर्शन लाया जा सकता है। प्रमुख आधारभूत मैकेनिकल डिस्टोर्शन ऑफ मूवमेंट इस प्रकार हैं-

- एनीमेशन
- फास्ट मोशन
- स्लो मोशन
- रिवर्स मोशन
- फ्रीज़ फ्रेम्स

एडिटिंग के अंतर्गत निम्न आधार आते हैं:-

- कांटीन्यूटी
- कटिंग
- मोंताज

रियलिज़्म		क्लासीसिज़्म	फ़ोर्मलिज़्म	
सीक्वेंस शॉट्स	कटिंग टू कंटिन्युटी	क्लासिकल कटिंग	थिमैटिक मोंताज	अब्स्ट्रैक्ट कटिंग

साउंड के अंतर्गत निम्न आधार आते हैं:-

- साउंड इफेक्ट
- म्यूजिक
- डायलॉग लैङ्ग्वेज

फ़िल्म के साउंड इफ़ेक्ट्स उसके गीत संगीत और संवाद की भाषा के आधार पर भी फ़िल्मों का मूल्यांकन किया जाता है।

एक्टिंग के अंतर्गत निम्न आधार आते हैं:-

- कास्टिंग
- स्टाइल ऑफ एक्टिंग

फ़िल्म मे चरित्रों की मांग के अनुसार कास्टिंग की गई है। एक्टर चरित्रों मे फिट बैठते है या नही । इसके अलावा अभिनय की किस शैली को प्रयोग किया गया है। यह अभिनय के आधार पर मूल्यांकन करते वक्त ध्यान रखा जाता है।

ड्रामा के अंतर्गत निम्न आधार आते हैं:-

- टाइम स्पेस अँड लैङ्ग्वेज :- देश, काल और वातावरण
- डायरेक्टर :- निर्देशक और निर्देशन
- सेटिंग्स अँड डेकोर
- कास्ट्यूम अँड मेक अप

स्टोरी के अंतर्गत निम्न आधार आते हैं:-

- नरेटिव – रियालिस्टिक, फोर्मालिस्टिक, नॉनफिक्शनल
- जेनेयर अँड मिथ

राइटिंग के अंतर्गत निम्न आधार आते हैं:-

- स्क्रीन राइटर
- स्क्रीनप्ले
- पॉइंट ऑफ व्यू
- लिटरेरी एडाप्टेशन

आइडियोलॉजी के अंतर्गत निम्न आधार आते हैं:-

- लेफ्ट सेंटर राइट मोडेल
- कल्चर, रिलीजन, एथ्निसिटी
- फेमिनिज़्म

उपरोक्त आधारों पर हम फ़िल्म का मूल्यांकन कर सकते हैं। तार्किक रूप से देखा जाए तो किसी फ़िल्म को लेकर हजार तरह के प्रश्न मन में खड़े हो सकते हैं। हम फ़िल्म मे क्या और उसे किस रूप में देख रहे है, इस पर भी बहुत सारी बातें निर्भर करती हैं। फिर भी उपरोक्त बातों को आधार बना कर हम फ़िल्म को समझने का प्रयास कर सकते हैं।

हिंदी सिनेमा में दलित-आदिवासी प्रस्तुति की सीमाएँ

अध्ययन

हिंदी सिनेमा का इतिहास अपने आप में समृद्ध कहा जा सकता है। पिछले दिनों हिंदी सिनेमा अपने सौ वर्ष पूरे करने का उत्सव मना चुका है। परंतु उसकी सीमाओं पर बात करना भी जरूरी हो जाता है। खासकर कि तब जब बात सिनेमा में दलित प्रस्तुति की हो। यहां मैं अवधानवश 'विमर्श' के स्थान पर 'प्रस्तुति' शब्द का प्रयोग कर रही हूँ। हिंदी सिनेमा के पिछले सौ वर्षों के इतिहास को खंगालकर देखने पर वहां दलित-आदिवासी की उपस्थिति किसी संतोषजनक विमर्श के रूप में नही जान पड़ती है।

सामाजिक दलित आंदोलन की वैचारिकी को आधार बनाकर हम हिंदी सिनेमा की पड़ताल करते हैं तो बहुत ही सीमाएँ सामने आती हैं। इन सीमाओं पर विस्तार से विचार करना एक महत्त्वपूर्ण विषय है।

भारत में फ़िल्म और जाति के अंतर्संबंध के सवाल पर बात ही नहीं की जाती। हालीवुड में हर साल 'डायवरसिटी रिपोर्ट' निकलती है। जिसमें यह आंकड़े प्रस्तुत किए जाते हैं कि सिनेमा में किस वर्ग का कितना प्रतिनिधित्व रहा जैसे स्त्री कलाकारों की संख्या, ब्लैक एक्टर, डायरेक्टरों की संख्या और ब्लैक विषय पर कितनी फिल्में बनी साल भर। इस सब पर वहां बात होती है, आंकड़ों का विश्लेषण किया जाता है। अब आवश्यकता है कि भारत में भी इस विषय पर खुलकर बात की जाए वह भी तथ्यगत आंकड़ों के साथ। क्योंकि बुरा न देखने और बुरा न सुनने से बुराई खत्म नहीं होती। यह केवल आपको निष्क्रिय बनाए रखने पैंतरा है। इसलिए वर्तमान में सभी जन माध्यमों द्वारा जाति प्रश्न पर बात करना बहुत आवश्यक है।

सिनेमा, रंगमंच और अन्य प्रदर्शनकारी नृत्य कलाओं का ही विकसित रूप है। रंगमंच और अन्य प्रदर्शनकारी कलाओं के इतिहास को उठाकर देखें तो पता चलता है कि दलित व पिछड़े ही इसके सर्वेसर्वा थे, जिसका कारण देश में दलितों की ही तरह संगीत, नृत्य और अभिनय कला को सदैव उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाना मान सकते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं कि "मनुस्मृति में हम गीत, वाद्य और नृत्य से अजीविका का निषेध देखते हैं तथा व्यवस्था पाते हैं कि सवर्णों को गीत, वाद्य और नृत्य से आजीविका का उपार्जन नहीं करना चाहिए।" (भारतीय साहित्य की भूमिका) आश्चर्य की बात है कि जिस कला का प्रारंभ दलितों व आदिवासियों से होता है, वर्तमान में वे ही उस अभिनय (सिनेमा) की दुनिया से नदारद है। ऐसा आकस्मिक नहीं हो गया है, बल्कि इसके पीछे सुनियोजित प्रक्रिया है। जिसके अलग-अलग चरण देखने को मिलते हैं। यह ठीक वैसा ही है जैसे वर्तमान में चमड़े का व्यापार दलित नहीं बल्कि सवर्ण पूंजीपति करते नजर आते हैं। हिंदी सिनेमा जैसे ही व्यवसायिक रूप धारण करना प्रारंभ करता है, उसका ओवरटेक मुख्य धारा के लोगों द्वारा कर लिया जाता है और दलित आदिवासियों के लिए प्रवेश के द्वार ही बंद हो जाते हैं। यह आभास होते ही कि सिनेमा में बाजार की संभावना असीम है, यहां लागत और मुनाफे की मोटी रकम का गणित खेलने लगता है।

सुनीता
पी एच डी हिंदी
अंबेडकर विश्वविद्यालय
दिल्ली

वर्तमान में प्रत्येक क्षेत्र में बाजारवाद का नियंत्रण है फिर हिंदी सिनेमा इससे अछूता कैसे रह सकता था। सिनेमा ने तो अपने शैशवकाल से ही व्यक्ति और समाज को अपने सम्मोहन में बांध रखा है। अपनी प्रस्तुति की रोचक ओर कलात्मक शैली के चलते अपनी बात जितनी सहजता और प्रभावी ढंग से अपने दर्शकों तक संप्रेषित कर सकने की क्षमता सिनेमा के पास है उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। सिनेमा का समाज से बहुत ही मजबूत रिश्ता होता है। हम आईने में अपने कलाकारों जैसा दिखना चाहते हैं तो सिनेमा के कलाकार अपने किरदार में हमारे जैसा दिखना चाहते हैं। परंतु एक कड़वा सत्य यह भी है कि दलित विषयों पर बनी फिल्में व्यवसायिक बेईमानी का शिकार नज़र आती है उनका सामाजिक सरोकार कहीं पीछे ही छूट जाता है।

हमारे समाज की ही तरह हिंदी सिनेमा भी कई धाराओं में बंटा हुआ है। इस लेख में कुछ फ़िल्मों को आधार बनाकर यह बताने का प्रयास किया गया है कि किस तरह से दलित-आदिवासी विषय पर बनने वाले सिनेमा

में भी एक विशिष्ट दृष्टिकोण हावी रहता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि दलित और आदिवासी को सिनेमा में लाने की कोशिशें मुख्यतः सुधारवादी और रूमानी दृष्टिकोण से प्रेरित रही है। इस विषय पर 1936 में बनी फ़िल्म 'अछूत कन्या' को हम अपना प्रस्थान बिंदु मानते हैं परंतु यह प्रस्थान बिंदु ही हमें निराश कर देता है। फ़िल्म में मनोहर (सवर्ण) और दुखिया (दलित) के बीच अतिरिक्त स्नेह और कृपा दिखाई गई है। इसके बावजूद 'प्रताप' और 'कस्तूरी' विवाह नहीं कर पाते। वे और उनके परिजन जातिगत असमानता को ही अपनी नियति मान लेते हैं।

ऐसा रूप तो डॉ. अंबेडकर तत्कालीन दलित आंदोलन को नहीं दे रहे थे। 1927 में ही डॉ. अम्बेडकर 'महाड़ आंदोलन' के रूप में चैदार तालाब को अछूतों के प्रयोग के लिए खोल कर एक सामाजिक विद्रोह का विगुल फूंक चुके थे। 'अछूत कन्या' फ़िल्म में मनोहर को एक मसीहा की तरह दिखाया गया है जो दुखिया के बीमार होने पर उसे अपने घर ले जाता है। गाँव वाले इसका विरोध करने मनोहर के घर पहुँच जाते हैं। इस पर दुखिया बाहर निकलकर आता है और सबसे हाथ जोड़कर क्षमा मांगता है और दलितों की यथास्थिति को ही स्वीकार करता है। फ़िल्मकार ने इस विषय पर फ़िल्म बनायी यह कम साहस का काम नहीं था, परंतु वह थोड़ा भी साहस दुखिया (दलित पात्र) में नहीं डाल पाया। कस्तूरी तो गांधी जी के हरिजन में से है जो केवल त्याग करना जानती है।

अतः सामाजिक दलित आंदोलन की वैचारिकी को आधार बनाकर हम हिंदी सिनेमा की पड़ताल करते हैं तो बहुत ही सीमाएँ सामने आती हैं। इन सीमाओं पर विस्तार से विचार करना एक महत्त्वपूर्ण विषय है।

'आक्रोश' (1980) गोविंद निहलानी द्वारा निर्देशित फ़िल्म है, जिसमें भीखू लहन्या (ओमपुरी) नामक आदिवासी की व्यथा बयान की गयी है। वह अपनी पत्नी नागी लहन्या (स्मिता पाटिल) के कत्ल के जुर्म में मुजरिम है। फ़िल्म में नेता, पूंजीपति और पुलिस अधिकारी तीनों मिलकर भीखू की पत्नी का बलात्कार कर उसकी जघन्य हत्या कर देते हैं। फ़िल्मकार निसंदेह यह दिखाने में सफल रहता है कि किस तरह यह तीनों वर्ग मिलकर आदिवासी का शोषण कर रहे हैं।

भीखू लहन्या यह जानता है कि यह स्वार्थी व्यवस्था उसे न्याय नहीं दे सकती, इसलिए वह खामोश रहता है। परंतु दर्शकों के सामने यह संदेश जाना गलत है कि लहन्या न केवल अपनी पत्नी के साथ हुए अत्याचार को खामोशी से सहन कर लेता है। वह स्वयं को भी उस अपराध के लिए बलि चढ़ा देता है जो उसने किया ही नहीं और अति तो तब हो जाती है जब वह अपने पिता का अंतिम संस्कार करने के साथ ही अपनी बहन की हत्या भी कर देता है। कहीं उसकी असहाय बहन भी उसकी पत्नी की ही तरह समाज के बेईमानों की दरिंदगी का शिकार न हो जाए।

मैं भीखू लहन्या द्वारा अपने जीवन के संघर्ष से पलायन कर घुटने टेकने को इस फ़िल्म की सीमा के रूप में देखती हूँ। न तो आदिवासियों का इतिहास ऐसा रहा है और न ही उनके संस्कार। वे बहुत ही संघर्षशील और जुझारू योद्धा होते हैं। विकट परिस्थितियों के बाद भी अंत तक घुटने नहीं टेकते। इस फ़िल्म में आदिवासियों को मूक रूप में दिखाया गया है, जो न केवल शोषण सहने के लिए अभिशप्त है, बल्कि अभ्यस्थ भी।

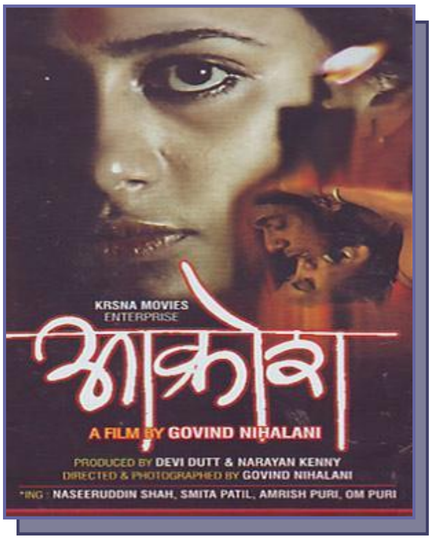

फ़िल्म का एक अन्य मुख्य किरदार दुसाणे वकील (अमरीश पुरी) है, जो स्वयं आदिवासी होकर भी पूँजीपति, नेताओं और प्रशासनिकों के केस लड़ता है। उन्हीं के साथ उसका उठना बैठना है। वह स्वयं को इस तरह डी-कास्ट कर चुका है कि सिर्फ केस लड़ने के अलावा उसकी न तो मानवता में कोई आस्था है न ही आत्मसम्मान और खुद्दारी में। एक तरफ तो हम इसे इस रूप में भी समझ सकते है, कि यहां फ़िल्मकार का उद्देश्य यह दिखाना है कि किस तरह से आर्थिक संपन्नता व्यक्ति को वर्ग के प्रति अधिक सचेत बनाती है। वह वर्गभेद को बनाए रखने के लिए स्वयं को ही अपने जाति भाईयों से दूर कर लेता है। साथ ही सवर्णों के बीच अपमानित होकर भी उनकी तरह दिखने की कोशिश में लगा रहता है।

मैं इस पूरी फ़िल्म को एक अलग ही नजरिये से पकड़ने की कोशिश कर रही हूँ। इस फ़िल्म में चाहे गरीब असहाय 'लहन्या' हो या फिर शैक्षिक व आर्थिक रूप से संपन्न 'दुसाणे वकील' दोनों ही हमें पतित नजर आते हैं। दोनों ही किरदारों में समानता है आदिवासी होना। वह न तो अपनी समस्याओं को समझते हैं और न ही उससे निजात पाने के लिए संघर्ष करते हैं। एक तरफ लहन्या नीयति

से समझौता कर घुटने टेक चुका है तो दूसरी तरफ दुसाणे अपनी सुख-समृद्धि की ओर पलायन कर चुका है।

ऐसी विकट परिस्थिति में फ़िल्मकार न जाने कहाँ से एक मसीहा भास्कर कुलकर्णी (सवर्ण) को ले आता है जो इन दलित आदिवासियों का उद्धार करने के लिए संघर्षरत है, भले ही वह अंत तक सफल नहीं हो पाता। उसकी असफलता का बोझ भी फ़िल्मकार लहन्या की खामोशी पर ही डाल देता है। अतः मुझे यह फ़िल्म एक विशिष्ट दृष्टिकोण का शिकार नजर आती है जो विषय तो सटीक चुनती है परंतु तटस्थता से उसे निभा नहीं पाती। साथ ही इस फ़िल्म का अंत एक गैर-जिम्मेदाराना तरीके से होता है। ऐसी फिल्में न तो दलित-आदिवासियों की सही स्थिति को बयान करती है ओर न ही उन्हें सही दिशा ही दे पाती।

'गुलामी' (1995) जे.पी. दत्ता निर्देशित फ़िल्म है। फ़िल्म का प्रारम्भ होता है राजस्थानी गाँव के एक दलित लड़के रणजीत के विद्रोह से जो अपने गाँव समाज में व्याप्त अस्पृश्यता, जातिवाद और जमींदारी की जड़े काटने का प्रयास करता है। रणजीत (धमेन्द्र) अपने स्कूल में पीछे नहीं आगे सवर्ण बच्चों के साथ बैठना चाहता है। ऊँची जाति के बच्चों के लिए रखे पानी के मटके से पानी पीकर वह छुआछुत का भेद मिटाना चाहता है।

पिता की मृत्यु के बाद परंपरा अनुसार रणजीत के सिर आता है पिता द्वारा जमींदार से लिया कर्ज, किंतु विद्रोही रणजीत इससे इनकार कर देता है। इसके बाद गाँव में लगातार कुछ घटनाएँ घटती हैं। जमींदार के विरुद्ध जाकर रणजीत गाँव छोड़कर जा रहे किसानों को गाँव में ही रोक लेता है। कर्ज में जमींदार के कारिन्दों द्वारा खोलकर लिए जा रहे किसानों के हल बैल वापस कराता है। दलितों के लिए प्रतिबंधित जमीदार के कुएँ पर सामुहिक रूप से पानी भरने के लिए संघर्ष करता है। दलित हवलदार गोपी (कुलभूषण खरबंदा) अपने बेटे के विवाह के अवसर पर दलित जातियों के लिए वर्जित घुड़चढ़ी की रस्म करने के प्रयास में अपने बेटे मोहन से हाथ धो बैठता है। गोपी जमींदारों के आगे घुटने नहीं टेकता ओर न ही अपने लड़के को घोड़ी में उतारकर कोई समझौता करता है। वह पूरी ताकत झोंककर संघर्षरत है, अपने अधिकार और समानता की इस लड़ाई में।

शुरुआत से ही फ़िल्म दलितों की मुक्ति की लड़ाई के लिए संघर्ष को लेकर चलती है वहीं मध्यांतर तक पहुँचते ही फ़िल्म में एक अलग मोड़ आ जाता है। जमींदार और साहूकारी शोषण के चलते एक आम इंसान से बागी बने, डाकुओं के सरदार का दृष्टिकोण पलटने के लिए रणजीत उन्हें पढ़ने के लिए मैक्सिक गोर्की का महान उपन्यास 'माँ' देता है। यहां फ़िल्मकार यह दिखाने का प्रयास करता है कि दलितों का उद्धार शिक्षा और मानवता में है न कि हिंसा और बंदूक में।

फ़िल्म के अंत में फ़िल्मकार वापस फ़िल्म की शुरूआत की तरफ ही मुड़ जाता है। तंग आकर रणजीत एक दिन जेल से भाग खड़ा होता है और अपने बेटे की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए हवलदार से बागी बने गोपी दादा के गैंग में शामिल हो जाता है। इसी गैंग में एक व्यक्ति और बागी बनता है- जाबर (मिथुन चक्रवर्ती)। फ़िल्म के अंत में रणजीत सिंह और जाबर गैंग के साथ गाँव पर हमला बोल देते हैं। जमींदारों और महाजनों की हवेलियों से इकट्ठा किए गए बही-खातों के ढेर पर जलती लुकाठी लगाकर अंत में रणजीत भी मर जाता है। समाप्त होती फ़िल्म डूबते सूरज की पृष्ठभूमि में रणजीत की पत्नी मीरा अपने नवजात शिशु को लिए खड़ी दिखाई देती है, जो उस सपने के बचे रहने की आशा का प्रतीक है।

यह फ़िल्म अपने आप में एक सशक्त प्रदर्शन मानी जा सकती है। इसमें फ़िल्मकार ने शुरुआत से अंत तक दलित जीवन की गुलामी से मुक्ति पाने के लिए विद्रोह के तमाम परीक्षण करके देख लिए। पहले रणजीत इस मुक्ति की लड़ाई में शिक्षा को अपना हथियार बनाता है फिर स्वयं अध्यापक बन लोगों को संघठित करता है। परंतु फ़िल्म में मध्यांतर के बाद रणजीत जमींदारों के अत्याचार से तंग आकर स्वयं बागी हो जाता है। अतः यह फ़िल्म विचारधाराओं की टकराहट को अपने ताने-बाने में समेटे हुए हैं।

इसे फ़िल्म की सीमा ही माना जाएगा कि वह अपनी पक्षधरता स्पष्ट नहीं कर पाती और शिक्षा व हिंसा के बीच घूमती रहती है। फ़िल्म का अंत भी दर्शकों को इस कन्फ्यूजन में छोड़ जाता है कि मुक्ति की लड़ाई में कौन सी राह सही है 'विचार' या 'हथियार'। रणजीत का अंत हथियार के साथ होता है तो उसके बेटे के जीवन की शुरूआत ही स्कूल (शिक्षा) के परिसर से होती है।

‘आरक्षण’ (2010) प्रकाश झा निर्देशित यह फ़िल्म दिखाने का प्रयास करती है कि भारतीय शिक्षा जगत में दलितों की क्या स्थिति होती है। उन्हें किस-किस तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। फ़िल्मकार ने शुरूआत में ही जाति प्रश्न पर गंभीर दस्तक दी है। फ़िल्म में दिखाया गया है कि किस तरह से हमारे शैक्षणिक संस्थानों में दलित वर्ग से संबंधित छात्रों व अध्यापकों को कठिन समस्याओं के साथ-साथ अपमान भी झेलना पड़ता है। फ़िल्म का मुख्य किरदार सैफ अली खान बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाता है कि ‘चैरिटी’ से जाति प्रश्न सुलझने वाला नहीं है।

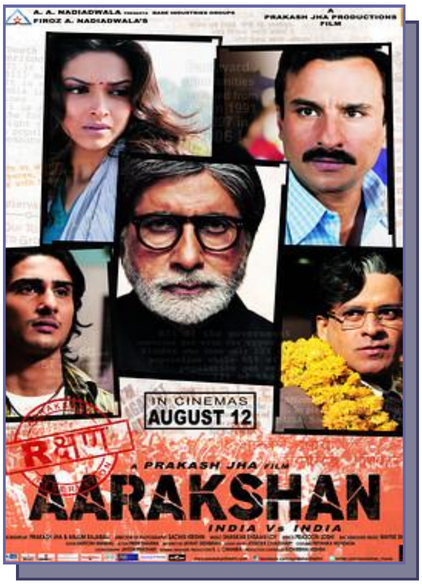

फ़िल्म में यह साफतौर पर देखा जा सकता है कि आरक्षण से आए दलित छात्रों को बार-बार उनका इतिहास याद दिलाकर नाकाबिल साबित किया जाता है तो कभी आरक्षण को उनका हक न समझकर खैरात मान लिया जाता है। दलित छात्र यदि कोटे से आए तो सवर्णों को परेशानी है और यदि मैरिट में आए तो भी उन्हें दिक्कत है। कुल मिलाकर सवर्ण वर्ग का आज भी यह मानना है कि दलितों को पढ़ाई-लिखाई से दूर ही रहना चाहिए और अपने पूर्वजों के व्यवसाय पर लग जाना चाहिए। परेशानी आरक्षण से नहीं बल्कि इस बात से है कि हजारों वर्षों से जिस 100 प्रतिशत पर सवर्ण अपना एकाधिपत्य जमाए बैठे थे उसे बांटे कैसे।

प्रकाश झा की इस फ़िल्म ने आरक्षण को एक कमजोर कड़ी के रूप में प्रस्तुत किया है जो समाज में दो वर्गों के बीच वैमनस्य की स्थिति पैदा करता है। कहानी मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल के एक कॉलेज में साथ-साथ पढ़ रहे दो घनिष्ठ दलित-सवर्ण मित्र दीपक (सैफ अली खान) और सिद्धार्थ (प्रतीक बब्बर) की है। आरक्षण जैसे मुद्दे पर सुप्रीम कोर्ट का निर्णय सार्वजनिक होता है और उनके बीच दरार पैदा हो जाती है। वे अपने-अपने जातीय हितों को लेकर आमने-सामने होते हैं।

फ़िल्मकार बहुत प्रयास के बाद भी आरक्षण को दलितों का अधिकार नहीं मान पाता। बल्कि उसकी संवेदना आरक्षण के मुद्दे पर दलित व सवर्ण दोनों ही पक्षों के साथ जुड़ी रहती है। फ़िल्म के मध्य तक पहुँचते-पहुँचते जाति का प्रश्न कहीं छूट जाता है। जातिगत असमानता की जगह आर्थिक असमानता ले लेती है। और फ़िल्म का अंत होता है आदर्शवाद के साथ जो कि हिंदी सिनेमा की सबसे बड़ी सीमा है। फ़िल्म प्राइवेट कोचिंग के प्रपंच में फंसकर पूरी तरह असफल साबित होती है।

इसे फ़िल्मकार की सीमा ही कहा जा सकता है कि फ़िल्म शैक्षिक संस्थानों में दलितों की समस्या से शुरू होती है और सभी की समस्या तक पहुँच जाती है। अर्थात् फ़िल्मकार यह मानकर चलता है कि भारतीय समाज में सभी की समस्याएँ समान है। कहीं-न-कहीं दबे-छिपे स्वर में फ़िल्म बड़ी चालाकी से यह संदेश दे जाती है कि आरक्षण को जातिगत आधार पर नहीं बल्कि आर्थिक आधार पर होना चाहिए। मानों भारत में अब सबसे बड़ी समस्या गरीबी ही है। जबकि गरीबों के लिए अलग से नीतियाँ और सरकारी सुविधाएँ हैं। गरीबी जैसे विषय पर फ़िल्म अलग से बनायी जा सकती है और बनी भी है। परंतु दलितों से संबंधित इतने महत्त्वपूर्ण विषय आरक्षण का इस तरह मखौल बना कर छोड़ देना संदेहास्पद है।

मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि प्रकाश झा ने अपनी फ़िल्म की पब्लिसिटी के लिए केवल आरक्षण शब्द का इस्तेमाल किया है। फ़िल्म इतने महत्वपूर्ण विषय पर कहीं से भी खरी नहीं उतरती। परंतु हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि ‘आरक्षण’ फ़िल्म अपनी रिलीज के पहले ही कितने विवादों में घिर गयी थी। उसे दर्शकों का प्रतिकार भी झेलना पड़ा था। आश्चर्य की बात है कि समानता पर बने संविधान के लागू होने के 60 वर्ष बाद भी भारतीय दर्शक इतना भी नहीं झेल पाए वे केवल फ़िल्म के नाम ‘आरक्षण’ पर ही तिलमिला उठे।

‘आक्रोश’ (2010) प्रियदर्शन द्वारा निर्देशित मूलतः ऑनर किलिंग की एक सत्य घटना पर आधारित फ़िल्म है। जिसमें जातिवादी पृष्ठभूमि, सामंतीय अत्याचार और पुलिसिया तानाशाही के बीच एक सवर्ण युवती गीता (विपाशा बासु) और दलित पुलिस अफसर प्रताप कुमार (अजय देवगन) के प्रेम, संघर्ष ओर पुनर्मिलन की कहानी भी साथ-साथ चलती है।

फ़िल्म में प्रताप स्कूल के बच्चों को संबोधित करते हुए कहता है, ‘अपनी जात से कभी शर्मिंदा मत होना इंसान की जात उसे छोटा-बड़ा नहीं बनाती, बल्कि उसके काम उसे छोटा-बड़ा बनाते हैं।’ परंतु यह सिखाने वाले मास्टर जी स्वयं ही इस परीक्षा में फेल हो जाते हैं। वह जानते हैं कि प्रताप एक ईमानदार पुलिस अफसर है जिसे सरकार भी सम्मानित करती है बावजूद इसके वे अपनी बेटी गीता का विवाह उससे नहीं कर पाते हैं। जिसका कारण प्रताप का काम से नहीं बल्कि जात से छोटा होना है।

फ़िल्म में जिसके मुख से ये तर्कशील बातें कहलवायी गयी व्यवहार में उसी के द्वारा उनका उल्लंघन फ़िल्म की एक बड़ी सीमा है। कारण फिर चाहे समाज का डर ही क्यों न हो। जब तक आप स्वार्थ हित में डरते रहेंगे तब तक जातिगत असमानता समाज में यूंही व्याप्त रहेगी। मास्टर जी प्रताप के अनाथ होने के बाद उसका हाथ थामते है और जीवन में सफल होने के लिए उसकी मदद भी करते हैं। पर जब बेटी से शादी करने की बात आती है तो वह प्रताप से अपना हाथ छुड़ा लेते हैं और बीच में खींच देते हैं जातिगत भेद-भाव की लकीर। जिसे न मास्टर जी भेद सकते है और न ही पढ़ा-लिखा कामयाब दलित युवक प्रताप।

इस फ़िल्म में फ़िल्मकार ने आशावादी दृष्टि भी दी है। प्रताप (अजय देवगन) और सिद्धार्थ चतुर्वेदी (अक्षय खन्ना) के रिश्तों में न तो ब्राह्मणवादी दंभ है और न ही दलित के प्रति कोई पूर्वाग्रह और घृणा। अतः फ़िल्म का अंत भी इस अर्थ में सफल साबित होता है कि जात-पात के चोले से बाहर निकलकर इनसानी रिश्तों का आपसी स्नेह और सम्मान ही समाज का सच्चा विकास कहला सकता है।

फ़िल्मकार इस आशा पर अंत करता है कि वो वक्त जरूर आएगा जब हिन्दुस्तान में हर आदमी जात-पात से नहीं बल्कि सिर्फ एक हिन्दुस्तानी होने के नाम से जाना जाएगा। गीता और प्रताप के रूप में युवा पीढ़ी अपना मंतव्य बता देती है। इसे फ़िल्म का सार्थक पहलू ही कहा जाएगा कि प्रेम ही जातिगत असमानता को दूर कर सकता है।

'मांझी' (2015) केतन मेहता द्वारा निर्देशित फ़िल्म एक ऐतिहासिक प्रेम कथा बनकर उभरी है। जो न केवल यह दर्शाती है कि दशरथ मांझी (दलित) एक हाड़-तोड़ मेहनतकश दृढ़ निश्चयी व्यक्ति था, बल्कि जिसकी सृजनशीलता सार्वभौमिक होकर गुजरी है। पहाड़ चीरकर रास्ता बनाना अपने आप में एक प्रतीक है, जो महादलित के जीवन संघर्ष को प्रतिबिंबित करता है।

दशरथ मांझी का पहाड़ तोड़ना एक महादलित के जीवन संघर्ष का प्रतीक है। उसे हर स्तर पर मुश्किलों के पहाड़ को अपने अथक परिश्रम और जीवंतता से ढ़हाना पड़ता है। दशरथ मांझी का प्रेम वैयक्तिकता से ऊपर उठकर समष्टि के हित में परिणत हो जाता है। अब प्रेम की पराकाष्ठा को परिभाषित करने के लिए सामान्य जनता के पास अपना जननायक है। जिसने पत्नी के प्रेम की लौ को जलाये रखा और रास्ता बना दिया।

केतन मेहता ने इस फ़िल्म में दिखाया है कि किस तरह से आजादी के बाद से ही दलितों व पिछड़ों को जबरन दबाकर रखा गया। नेताओं, जमींदारों और नौकरशाही ने उन तक कोई सुविधाएँ नहीं पहुँचने दी यह वर्ग डरता है कि कहीं दलित अपने अधिकारों के प्रति सचेत होकर इनके सामने न खड़ा हो जाए। ऐसे में क्या होगा इनकी परजीवी संस्कृति का जो दलितों और मजदूरों की हाड़-तोड़ मेहनत पर निठल्ले बैठकर पलती है। जोंक की तरह उनका खून चूसती है।

फ़िल्म में मुख्य रूप से दशरथ मांझी के संघर्ष को ही दिखाया गया है। इस तरह की फ़िल्म तभी बन पायी क्योंकि यथार्थ जीवन में एक दलित ने ऐसा कर दिखाया। फ़िल्म में कहीं-कहीं जाति प्रश्न को उठाने का भी छुटपुट प्रयास किया गया है। परंतु इसका ढाँचा वही परम्परागत है, जमींदारों द्वारा दलित स्त्रियों पर बलात्कार, बंधुआ मजदूरी, बेगार आदि।

फ़िल्म के प्रारंभ में ही ठाकुर निर्भय सिंह एक दलित युवक के पैरों में घोड़े की नाल ठुकवा देता है, जिसका कसूर केवल इतना था कि वह जूते पहनकर ठाकुर के सामने आ जाता है। जैसे कि जूते पहनना केवल सवर्ण का अधिकार है और जूते खाना दलित का कर्तव्य। एक अन्य परिदृश्य में जब दशरथ मांझी 1962 में गाँव वापस आता है धनबाद कोयला खान में काम करने के बाद तो ठाकुर व उसके बेटे को गले लगा लेता है। वह समझता है चूंकि अब छुआछूत कानूनन अपराध है। इसलिए सभी समान है ओर वह किसी को भी छू सकता है। परंतु ठाकुर व जमींदारों ने इस कानून को अभी स्वीकारा नहीं है। वे दशरथ मांझी की गलती की सजा उसे पीटकर देते हैं।

इस फ़िल्म का सबसे मार्मिक सीन वह है जिसमें दलित मजदूर ईटखोले में आग डाल रहे होते हैं। उसी आग में एक दलित मजदूर गिर जाता है। जमींदार के लिए उस दलित की जान से ज्यादा ईटखोले में पक रही ईंटों का महत्त्व है। इसलिए वह आग बुझाने के लिए पानी नहीं डालने देता। दलित युवक उसी आग में जलकर मर जाता है। उसकी पत्नी रोटी - बिलखती रहती है। बाकी मजदूरों को जमींदार बंदूक की नोक पर चुप कर देता है। फ़िल्म में दलित की वही निरीह व असहाय दबी कुचली परंपरागत छवि देखने को मिलती है।

'मसान' (2015) नीरज द्वारा निर्देशित बहुत ही प्रतीकात्मक फ़िल्म है। इस फ़िल्म में दो कहानियाँ साथ-साथ चलती है। दोनों प्रेमी युगल जोड़ों की दास्तान बया करती है जो बीच में ही दुर्घटना का शिकार हो जाती है। अभिनेत्री ऋचा चड्ढा अपनी ही कोचिंग में पढ़ने वाले एक युवक के प्रति आकर्षित होती है। दोनों आपसी रजामंदी से एक होटल में निकटस्थ समय बिताने के लिए पहुँच जाते हैं। बीच में ही पुलिस आकर जो अनैतिक खेल खेलती है, उससे घबराकर युवक आत्महत्या कर लेता है।

युवक आत्महत्या क्यों करता है, फ़िल्मकार यह सोचने की जिम्मेदारी अपने दर्शकों व समाज पर छोड़ देता है। वहीं ऋचा चड्ढा को एक मजबूत व्यक्तित्व के रूप में दिखाया गया है वह कहती है- 'जो किया हम दोनों ने मिलकर किया।' लड़का जिसे अकेले में सही और जरूरी समझता था, उसकी सामाजिक पुष्टि से डर जाता है और पारिवारिक इज्जत-बेज्जती की गिरफ्त से घबराकर आत्महत्या कर लेता है।

दूसरी कहानी में आरती जो कि एक सवर्ण संपन्न परिवार की लड़की है, इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर रहे दलित युवक से प्रेम करती है। लड़के का परिवार हरिश्चन्द्र घाट पर मुर्दे जलाने का काम करता है। आरती को लड़के की जातिगत व पारिवारिक पहचान से कोई परेशानी नहीं है परंतु वह जानती है कि उसके माता-पिता आज भी घिसी-पिटी, मानसिकता का शिकार है। वे उस लड़के को कभी स्वीकार नहीं करेंगे। आरती परिवार के साथ गंगोत्री जाते वक्त फोन पर लड़के को अपना फैसला सुनाती है कि 'तुम बस एक नौकरी ले लो बाकी मैं संभाल लूंगी अगर भागना भी पड़ा तो भाग जायेंगे।'

युवा पीढ़ी जाति या धर्म के किसी भेदभाव को नहीं मानते। फ़िल्म में प्रेम की पक्षधरता इस बात का संकेत है कि देश की युवा पीढ़ी तर्कशील विकास की ओर अग्रसर है। परंतु फ़िल्मकार अंत में आरती के साथ हुई दुर्घटना (जब उसकी बस खाई में गिर जाती है और वह अपने परिवार के साथ मर जाती है) को कैसे जस्टीफाई करेगा। शायद फ़िल्मकार को मजबूरन इस साहसी लड़की की प्रेम कहानी को ऐसा मोड़ देना पड़ा। फ़िल्म में लड़की की मृत्यु के साथ ही प्रतिरोध के संघर्ष की संभावना भी समाप्त हो जाती है।

'मसान' एक बहुत ही महत्वपूर्ण फ़िल्म है जो हमारे इस सवाल का जवाब देती है कि क्यों हिंदी सिनेमा दलित व आदिवासी विषय पर फ़िल्म बनाने से कतराता है। क्या कारण है कि समाज के ठेकेदारों के बीच ऐसी फ़िल्मों को प्रतिकार का सामना करना पड़ता है। ऐसी फ़िल्मों को बहुत से जोखिम उठाने पड़ते हैं। पहले तो स्क्रीन नहीं मिलती और अगर मिली भी तो सैंसर बोर्ड उसमें इतनी काट-छांट कर देता है कि फ़िल्म का कोई उद्देश्य ही बाकी नहीं रह जाता। इसके बाद जो किसी तरह रिलीज भी हो गई तो बॉक्स-ऑफिस पर इतना ठण्डा रिसपोन्स मिलता है कि फ़िल्मकार तो वैसे ही बर्बाद हो जाता है। फिर भला ऐसे विषयों पर कोई फ़िल्मकार फ़िल्म बनाने का जोखिम क्यों उठाए।

समाज के पुरातनपंथी लोग देश को जिन खांचों में बांटकर बांधे रखना चाहते हैं कहीं-न-कहीं ऐसी फिल्में उसके लिए एक खतरा पैदा करती है। शिक्षा के प्रसार ने विचारों और भावों की उन्मुक्त अभिव्यक्ति को विस्तार प्रदान किया है। अब वह समय आ गया है जब युवा पीढ़ी इस सारे बंधनों को तोड़ देना चाहती है। ऐसे में लाजमी है कि समाज के ठेकेदार व वर्णव्यवस्था के समर्थक साहित्य व सिनेमा पर ऐसे पहरे बिठा दे जो नग्न यथार्थ को झूठ के आवरण में ढंककर प्रस्तुत करे।

दलित व आदिवासी विषय पर बनी कुछ महत्वपूर्ण फ़िल्मों पर विचार विस्तार से रखने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि हिंदी सिनेमा दलित-आदिवासी जीवन को उसके सही रूप में अब तक प्रस्तुत नहीं कर सका। सिनेमा जगत में दलित-आदिवासियों की अनुपस्थिति इसका एक बड़ा कारण है। जिस प्रकार स्वयं दलित-आदिवासियों ने साहित्य, राजनीति ओर सामाजिक आंदोलनों के क्षेत्र में आकर अपनी आवाज बुलंद की, वैसे ही सिनेमा के क्षेत्र में भी उन्हें स्वयं आकर हस्तक्षेप करना पड़ेगा। खासकर कि शीर्ष स्तर पर।

सिनेमा बहुत ही महत्वपूर्ण क्षेत्र है समाज की नब्ज को पकड़ने का और उसे प्रभावित करने का भी। सिनेमा की पहुँच जन-जन तक उपलब्ध है। जहाँ तक साहित्य अपनी पैठ नहीं बना पाता वहां भी सिनेमा बड़ी सहजता से पहुँच जाता है। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि हम हिंदी सिनेमा के भीतर दलित व आदिवासी समाज की चुनौतियों और उपलब्धियों को सही स्थान दिलाए। फ़िल्म का काम दर्शकों के संवेदन को मांजना होना चाहिए न कि केवल कहानी का अनुवाद करना।

समाज को आईना दिखाने का दावा करने वाले हिंदी सिनेमा में समानता पर आधारित संविधान निर्माण को इतने वर्षों बाद भी न तो दलित की छवि बदली है और ना ही उसे वह सम्मान मिल पाया है, जो दूसरे वर्गों को प्राप्त है। हिंदी सिनेमा परिवर्तन को देख नहीं पा रहा है या फिर दिखाना ही नहीं चाहता है। शायद हिंदी सिनेमा में दलित व आदिवासियों की प्रस्तुति दबी-कुचली, डरी-सहमी, मजदूर व असहाय रूप में मिलती है। जबकि आज समाज में इस वर्ग की सफलता और उपलब्धि किसी से छिपी नहीं है। प्रदर्शन की इस परम्परागत छवि को तोड़ना बहुत जरूरी है। दलित पात्रों में आत्मबोध आत्मसम्मान, मनुष्यगत अस्मिता, स्वाभिमान जैसे गुण क्यों नहीं दिखाए जाते? वह अपने तिरस्कार पर विद्रोह करता नहीं दिखता? जबकि वर्तमान में दलित इतना निरीह नहीं है। वह सामान्य जन-जीवन में अपने तिरस्कार का प्रतिरोध करता है।

पहले की फिल्में हो या वर्तमान का हिंदी सिनेमा, दलित जीवन को लेकर पूर्वाग्रह से ग्रसित दिखाई देता है। 'अंकुर' फ़िल्म के अंत में जो लड़का पत्थर फेंकता है वह सवर्ण का ही खून होता है। 'राजनीति' फ़िल्म में दलितों का नेता 'सूरज' भरी सभा में सवर्णों और ऊँचे लोगों से लोहा लेता दिखाया गया है। लेकिन आखिर में वह भी सवर्ण की ही संतान साबित होता है। अंततः फ़िल्म उसी परिपाटी पर लौट आती है कि दलितों का वह मसीहा इसी कारण से इतनी प्रमुखता पा सका क्योंकि उसकी नसों में उसी सवर्ण राजनीतिक खानदान का खून दौड़ रहा था।

न तो हिंदी सिनेमा दलित व आदिवासियों की उपलब्धि को सही रूप में दर्शा पाया है और न ही उनकी समस्याओं को सही आवाज ही पाया है। परंतु अब समय आ गया है जब हिंदी सिनेमा में भी दलितों व आदिवासियों की उपस्थिति सशक्त व मजबूत रूप में दिखाई देनी चाहिए उनके जीवन की यथार्थ समस्याओं के साथ।

संदर्भ सूची

हिंदुस्तानी सिनेमा के सौ वर्ष, नया पथ, जनवरी-जून 2013, संयुक्तांक, संपा- मुरली मनोहर प्रसाद सिंह
हिंदी सिनेमा के 100 साल, हंस, फरवरी 2013, संपा. राजेन्द्र यादव
हिंदी सिनेमा पर केन्द्रित, वसुधा 81, वर्ष 2006, संपा. स्वयं प्रकाश
हिंदी सिनेमा पर, केंद्रित, समसामयिक सृजन, अक्टूबर-मार्च 2013 संयुक्तांक, संपा. महेन्द्र प्रजापति
फिल्म - अछूत कन्या, निर्देशक - फ्रेंज ओस्टन, 1936
फिल्म - आक्रोश, निर्देशक- गोविन्द निहलानी, 1980
फिल्म - गुलामी, निर्देशक - जे.पी. दत्ता, 1985
फिल्म - आरक्षण, निर्देशक - प्रकाश झा, 2010
फिल्म - आक्रोश, निर्देशक - प्रियदर्शन, 2010
फिल्म - मांझी, निर्देशक - केतन मेहता, 2015
फिल्म - मसान, निर्देशक - नीरज, 2015

PERSONALITIES

भारतीय सिनेमा की एक प्रयोगशाला...

व्यक्तित्व

राम गोपाल वर्मा

1995 में हिंदी फ़िल्म इंडस्ट्री में एक नया नाम एकाएक ही बहुत बड़ा हो गया, यह नाम था राम गोपाल वर्मा और वजह थी फ़िल्म रंगीला। इस फ़िल्म से पहली बार पूरी हिंदी फ़िल्म इंडस्ट्री ने ना सिर्फ राम गोपाल वर्मा की सराहना की बल्कि इनके रचनात्मक प्रतिभा का स्वागत भी किया। इसके बाद उन्होंने बॉलीवुड को ना सिर्फ बेहतरीन फिल्में दीं बल्कि इस इंडस्ट्री को फ़िल्म बनाने का एक नया नज़रिया भी दिया। आज ये काफी सफल-असफल फिल्में देने के बाद एक बार फिर से बॉलीवुड में कमबैक करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। कुछ फ़िल्म समीक्षक बड़े ही हल्के शब्दों में उनकी कुछ असफल फिल्मों की दुहाई देकर मज़ाक उड़ा देते हैं। ऐसे लोगों के लिए मुझे एक एक याद आ रही है... *'असफल होने से बचने का सबसे आसान तरीका है कि कभी प्रयास ही मत करो।'* राम गोपाल वर्मा से पहले तक अधिकतर फ़िल्म निर्देशक यही करते भी थे। एक बने हुए फार्मूले को आधार बनाकर भारतीय दर्शकों को एक ऐसी दुनिया में ले जाते थे जिसका एक आम दर्शक से दूर-दूर तक कोई सरोकार ही नहीं होता था। राम गोपाल वर्मा ने भारतीय सिनेमा में सबसे अधिक प्रयोग करते हुए फ़िल्म निर्माण की अपनी एक खुद की शैली का निर्माण किया।

> मेरी अपने आप को और दूसरों को लगातार पढ़ने का जुनून ही शायद पहली प्रेरणा थी की मैं फ़िल्म मेकर बनूँ और फिल्में बनाऊँ"।

राम गोपाल वर्मा कौन है?

आज बॉलीवुड में अपनी खास पहचान बनाने वाले राम गोपाल वर्मा (रामू) का जन्म 7 अप्रैल 1962 को हैदराबाद में कृशनम राजू और सूर्यम्मा के यहां हुआ। स्कूल में रामू एक औसत दर्जे से भी नीचे के छात्र रहे, पढ़ाई में उनका मन कभी लगा ही नहीं और वो हमेशा ही स्कूल छोड़कर भाग जाया करते थे। उनकी इस आदत से उनके घर वाले उनके भविष्य को लेकर काफी परेशान रहने लगे, खासकर इनके पिता जी। बचपन से ही रामू का फिल्मों के प्रति काफी आकर्षण था। एक ओर इनके पिताजी की चाहत थी उनका बेटा पढ़ लिखकर इंजिनयर बने तो वहीं दूसरी ओर रामू थे जिनका मन पढ़ाई-लिखाई में कभी लगा ही नहीं। घर वालों के दबाव में आकर रामू ने विजयवाड़ा के एक इंजीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश तो ले लिया लेकिन उनका दिल और दिमाग अगर किसी चीज़ को समझ पाता था तो वो सिर्फ सिनेमा ही था। सीविल इंजीनियरिंग की पढ़ाई करने वाले रामू का जीवन काफी उदासीन हो गया था। कॉलेज की पढ़ाई के दौरान वो प्राय: क्लास छोड़कर फ़िल्म देखने भाग जाया करते थे। उस समय वो सिनेमा हॉल जाकर सप्ताह में लगभग 8-10 फिल्में देखा करते थे। फिल्मों के प्रति उनके जुनून का आलम यह था कि वो सिर्फ किसी दृश्य विशेष तक को देखने के लिए सिनेमा हॉल में एक ही फ़िल्म को बार-बार देखने चले जाते।

वह समय भी आ गया जब रामू की पढ़ाई पूरी हो गई। इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद वो दिशाहीन हो गए थे। रामू को बिलकुल ही समझ में नहीं आ रहा था कि अब करना क्या है, एक तरह से ये किसी बेकार सामान की तरह हो गए थे। इस बारे में राम गोपाल वर्मा कहते हैं...

विवेक कुमार गुप्ता
दिल्ली

"मैं अपने माता-पिता की नज़रों में एक बेकार सामान की तरह हो गया था, जो एक तरह से सच भी था। मेरे जीवन में कोई उद्देश्य ही नहीं था। मैं कुछ खास तरह के लोगों को देखकर मोहित हो जाया करता था, इसलिए मैंने उनकी आदतों को पढ़ना शुरू कर दिया। मैं सबसे अधिक अपने ही क्लास के कुछ बदमाश लड़कों की आदतों से प्रभावित हुआ करता था। वे मेरे लिए किसी गैंगेस्टर-बदमाश की तरह दिखते थे। उनके पास इतनी क्षमता थी कि वे किसी के भी सामने बिना किसी से डरे कहीं भी आ-जा सकते थे, बिना किसी डर के वे जो चाहे कर सकते थे, लेकिन मैं कुछ भी नहीं कर सकता था, शायद मेरे अंदर कुछ करने की इच्छा ही नहीं थी। लेकिन मुझे ऐसा लगता है (हँसते हुए) – कि मुझे उनकी ही तरह एक दोस्त की जरूरत है। वे मेरे लिए किसी हीरो की तरह थे। उस समय ऐसे

लड़कों का साथ मेरे लिए पहला कोई समाज विरोधी कार्य था। एक लंबे समयावधि के बाद, ऐसे लोग जिनका जीवन समान्य लोगों के जीवन से कहीं अलग था से मेरा मोह अब कम होने लगा था। मैं हमेशा अकेलापन महसूस करता था- इसलिए नहीं कि मैं खुश नहीं था, बल्कि इसलिए कि मैं खुद से ही अलग रहता था, न की दूसरों से। इसलिए मैंने खुद को ही पढ़ना शुरू किया-मेरे बात करने का तरीका, मेरा रहन-सहन, मेरी आदत। इस तरह से मैंने अपने आप को पढ़ना शुरू कर दिया। मेरी इस आदत की वजह से मैंने दूसरों को भी पढ़ना शुरू कर दिया। मेरी अपने आप को और दूसरों को लगातार पढ़ने का जुनून ही शायद पहली प्रेरणा थी की मैं फ़िल्म मेकर बनूँ और फिल्में बनाऊँ"।

राम गोपाल वर्मा का फिल्मों के लिए संघर्ष

रामू अब एक सीविल इंजीनियर बन चुके थे लेकिन अपना भविष्य फ़िल्मों में तलाश रहे थे। यह बड़ी ही दिलचस्प बात है कि रामू ने सिनेमा की कभी कोई पढ़ाई भी नहीं की और सपने देख रहे थे फ़िल्म बनाने के। पढ़ाई के लिए कभी समय ना देने वाले रामू ने फिल्मों के लिए दिन-रात एक कर दिये। उनका समाज और समाज में हो रहे घटनाओं को देखने का अपना एक अलग ही नज़रिया था। वो समाज के उस पहलू को देखते थे जिसकी ओर बाकी लोग ध्यान भी नहीं देते। उन्होनें अपने आस-पास की होने वाली घटनाओं को अपने नज़रिये से कहानी के रूप में लिखना शुरू किया और फिर उन्हें पटकथा का रूप देने लगे। ऐसी ढेरों कहानी व पटकथा लिखने के बाद उन्होनें फ़िल्म निर्माता-निर्देशकों से मिलना शुरू किया। रामू बार-बार एक नई कहानी-पटकथा लेकर निर्माता-निर्देशकों से मिलते और हर बार उनकी कहानी सुनकर उन्हें मना कर दिया जाता। बार-बार नाकारे जाने के बाद अंततः रामू को अपना निर्णय बदलना पड़ा।

रामू को एक ऐसा व्यवसाय करना था जिसमें उनका मन लग सके इसलिए उन्होनें हैदराबाद में ही एक विडियो लाइब्रेरी खोल लिया। ऐसा नहीं है कि इस असफलता के बाद रामू ने फ़िल्मों में जाने का अपना निर्णय छोड़ दिया था। वीडियो लाइब्रेरी में तो वो अब फिल्में देखकर फ़िल्म बनाने की छोटी-छोटी बारीकियों का अध्ययन करने लगे। रामू ने एक बार फिर से कहानियाँ लिखना शुरू किया और एक बार फिर से निर्माता-निर्देशकों से मिलना शुरू किया।

इस बार रामू को एक तेलगु फ़िल्म में मौका मिला, लेकिन किसी दूसरे की फ़िल्म में बतौर सहायक निर्देशक। रामू किसी तरह फ़िल्म इंडस्ट्री में आ तो गए लेकिन वो संतुष्ट नहीं थे। इसी दौरान एक बार रामू की बात तेलगु फ़िल्म के सुपरस्टार नागार्जुन से हुई और नागार्जुन ने उन्हें अपने स्टुडियो में लगे सेट पर ही मिलने के लिए बुला लिया।

वहाँ रामू ने अपने कहानी का एक दृश्य नागार्जुन को सुनाया जिसे सुनकर नागार्जुन इतने अधिक प्रभावित हुए की उन्होनें ना सिर्फ इस फ़िल्म को बनाने के लिए निर्णय किया बल्कि उस फ़िल्म में काम भी करने के लिए हाँ कर दिया। नागार्जुन ने इस एकदम नए निर्देशक को ही निर्देशन की ज़िम्मेदारी सौंपी। रामू ने इस फ़िल्म को तेलगु में 1989 में शिवा नाम से बनाया और यह फ़िल्म सुपर हिट रही। इस तरह एक लंबे संघर्ष के बाद राम गोपाल वर्मा अपनी मंज़िल पर आ गए जहां से उन्हें एक नई यात्रा की शुरुआत करनी थी।

बॉलीवुड में राम गोपाल वर्मा यानी एक नया बॉलीवुड

1990 में एक क्राइम फ़िल्म आई, जिसका नाम था **शिवा**। यह फ़िल्म बॉक्स ऑफिस बहुत अधिक धमाल तो नहीं मचा पाई फिर भी यह फ़िल्म सफल रही। इस फ़िल्म ने सिने विश्लेषकों और इस विधा के साधकों का ध्यान अपनी ओर खींचा। ऐसा नहीं हैं इस फ़िल्म से पहले इस मुद्दे पर कभी फ़िल्म नहीं बनीं थी। फ़िल्म शिवा से पहले भी इस विषय पर ढेरों फिल्में ना सिर्फ बनीं थीं बल्कि सफल भी रहीं थीं। रामू फ़िल्म शिवा के द्वारा बॉलीवुड में एक नई ताज़गी लेकर आए। इस फ़िल्म में सब कुछ नया था, फ़िल्म का ट्रीटमेंट, नैरेशन या फिर कैमरे का प्रयोग सब कुछ नए जैसा था। यह फ़िल्म आम लोगों को सीधा अपने साथ जोड़ती थी। वास्तव में देखा जाए तो इस फ़िल्म से बॉलीवुड को एक ऐसा निर्देशक मिला था जो अपने आप में एक फ़िल्म का स्कूल था, आने वाले समय में बॉलीवुड प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से इस निर्देशक से प्रभाव ग्रहण करने वाला था।

ज़रा याद कीजिए 80-90 का दशक जब भारतीय फिल्में मार-धाड़ एक्शन से भरपूर हुआ करती थीं। जब बॉलीवुड का हीरो किसी अवतरित पुरुष की तरह पर्दे पर आता था और उड़-उड़ कर 20-30 गुंडों को धूल चटा देता था। जब गोलियां चलती तो बेहिसाब, जिसे देखकर दर्शक सीटियाँ बजाते थे। अब ज़रा आज-कल की कुछ अच्छी फिल्मों को याद कीजिये। आज अगर पिछले 10-15 सालों के कुछ सफल फिल्मों की लिस्ट बनाई जाए तो उनमें लगभग आधी फिल्मों में आपको आपके अगल-बगल का परिवेश व पात्र दिखेंगे जो वास्तविकता का एहसास करवाता है ।आप ज़रा विशाल भारद्वाज की ओमकारा या अनुराग कश्यप की गैंग्स ऑफ वासेपुर या मसान या दम लगा के हइसा जैसी फिल्मों को देखिये इन सभी फिल्मों को यथार्थवादी शैली में बनाया गया है। इन आज कल के फिल्मों के हीरो के पास सुपरमैन वाली शक्ति नहीं होती लेकिन ये फिल्में अन्य फिल्मों के तुलना में न सिर्फ अधिक प्रभावशाली होती है बल्कि दर्शक भी इन फिल्मों को पसंद करते हैं। आर्थत बॉलीवुड में फ़िल्म बनाने की एक नई परंपरा की शुरुआत हो चुकी है। अब ज़रा याद कीजिये फ़िल्म हिंदी फ़िल्म शिवा को, 1990 में आई इस फ़िल्म ने अपनी सभी पुरानी परम्परों को तोड़ती है। बॅकग्राउंड में एकदम सीमित ध्वनि, फ़िल्म के गुंडे जे. डी., गणेश या चक्रवती हों या फ़िल्म का हीरो शिवा सबका चरित्र हमारे परिवेश में हमारे आस-पास ही दिखता। ना ही इस फ़िल्म का हीरो ही उड़ कर मार पाता है ना गुंडे फिर भी यह फ़िल्म अपनी पुरानी फिल्मों से अधिक प्रभाव छोड़ती है। यहाँ तक कि इनके हाथ में दिखने वाला हथियार भी बेहद समान्य है, जिसे हम अपने परिवेश में आसानी से देखते हैं। अर्थात जिस रियलिस्टिक फिल्मों को हम आज-कल पसंद कर रहे हैं उसकी शुरुआत 1990 में ही रामू ने कर दिया था।

अगर ध्यान से देखा जाए तो आप पाएंगे कि इस परंपरा की शुरुआत करने का श्रेय रामू को ही जाता है। रामू ने हरेक जेनर की फ़िल्म को यथार्थ के करीब पहुंचाया है। रोमांटिक कॉमेडी रंगीला बनाकर रामू ने बहुत पहले ही फ़िल्मी विद्वानों को बता दिया था कि एक निर्देशक चाहे तो अपने आस-पास के परिवेश में भी रोमांस को ढूंढ सकता है। इसके पहले इस तरह की जब भी फिल्में बनी वो किसी अंजान दुनिया की ही लगती थी। इनकी हॉरर फ़िल्म रात, डरना माना है या भूत की बात करें तो ऐसी फिल्मों को भी रामू ने वास्तविकता के करीब ला दिया है। इसके पहले मरी हुई आत्माएं या तो जंगलों में भटकते हुएं गाना गाती थी या फिर डरावनी शक्ले अख्तियार करके हंगामा मचाती थी। फ़िल्म शिवा के बाद सत्या, कंपनी, सरकार, सरकार राज, रक्तचरित्र जैसी बहुत सी फ़िल्मों का निर्देशन रामू ने किया। इसमें कोई दो राय नहीं कि रामू की बहुत सी फिल्में व्यावसायिक रूप से असफल रही लेकिन किसी को यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रयोगशाला में भी किया गया हर प्रयोग सफल नहीं होता, लेकिन जब सफल होता है तो उसे सभी अपनाते हैं। आज जो कुछ फ़िल्म निर्देशक लीक से हटकर अच्छी फिल्में बना रहें हैं उसका रास्ता रामू ने ही दिखाया था। दरअसल प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से आज रामू के परंपरा को ही आगे बढ़ाया जा रहा है।

रामू की 'आग' के बाद दर्शक लगातार उनकी फिल्मों को नकारते जा रहे हैं। आज उनकी फिल्मों में पैसा लगाने वाले निर्माताओं की कमी हो गई है, लेकिन प्रयोगवादी रामू कम बजट में छोटे कैमरे से ही फिल्में बना रहे हैं। यह रामू का फिल्मों के प्रति अटूट आस्था ही है कि रामू एक बार फिर से एकदम नए कलाकारों के साथ एक नई हिंदी फ़िल्म किलिंग विरप्पन बना रहे हैं। उम्मीद है इस बार रामू एक बार फिर से एक नई ताज़गी लेकर आएंगे जो दर्शकों को अभिभूत कर जाए।

संदर्भ:

- जय प्रकाश चौकसे से बातचीत।
- www.filmibeat.com/celebs/ram-gopal-varma/biography.html
- http://www.bhadas4media.com/old/web-cinema/2222-film-alok-nandan.html

समीक्षा

स्त्री विमर्श का अगला पड़ाव है : 'की एंड का'

कुछ फ़िल्में खूबसूरत ख्वाबों की तरह होती हैं। जिन्हें देखने के बाद बार-बार यह ख़्याल आता है कि हमारी वास्तविक जिंदगी में ऐसा क्यों नहीं हो सकता? जाने-अनजाने ये फ़िल्में हमारी सोच और संकृति दोनों को प्रभावित करती हैं। निर्देशक आर. बाल्की की फ़िल्म 'की एंड का' का असर भी कुछ ऐसा ही है।

फ़िल्म देखने के बाद दर्शकों के ज़ेहन में अचानक से यह ख़्याल आता है कि हमारे समाज में 'हाउस हस्बैंड' जैसा शब्द क्यों नहीं हो सकता? भारतीय समाज में समान्यतः 'हाउस वाइफ' शब्द ही प्रचलन में है। पर आर. बाल्की की फ़िल्म 'की एंड का' इस धारणा का विकल्प पेश करती है और इसी बहाने बदले हुए समाज में स्त्री -पुरूष संबंधों को टटोलती है। अगर समाज में स्त्री-पुरूष की भूमिकाएं बदल जाएं तो क्या होगा? अगर मर्द के बदले औरत बाहर का काम करने लगे और मर्द घरवाला बन जाए तो इस दुनिया की तस्वीर कैसी होगी?

भारतीय समाज में समान्यतः 'हाउस वाइफ' शब्द ही प्रचलन में है। पर आर. बाल्की की फ़िल्म 'की एंड का' इस धारणा का विकल्प पेश करती है और इसी बहाने बदले हुए समाज में स्त्री -पुरूष संबंधों को टटोलती है।

वर्षों पहले अमिताभ बच्चन और जया बच्चन की फ़िल्म अभिमान ने भी समाज के पुरूषवादी रवैये पर बड़ा सवाल किया था। फ़िल्म की एंड का को हम इस विमर्श की अगली कड़ी के रूप में देख सकते हैं। बदलते वक्त के साथ समाज में स्त्री-पुरूष संबंधों में भी बदलाव होता रहा है। पुरानी परंपरा के अनुसार पुरूष बाहर के काम संभालते थे और स्त्री घर का। धीरे-धीरे इस सोच में परिवर्तन हुआ और स्त्रियां बाहरी जवाबदारी तो निभाने लगी। लेकिन घर-गृहस्थी की ज़िम्मेदारी अभी भी पूरी तरह महलाओं के ज़िम्मे ही है। इस व्यवस्था में पुरूष गृहस्थी के कामों से आजाद रहते हैं। लेकिन यदि कोई पुरूष ऐसा करता भी है तो उसे ताना दिया जाता है कि वह पत्नी के कमाए टुकड़ों पर पलता है। लेकिन बाल्की बड़ी बारीकी से इस सवाल का जवाब देते हैं कि अगर मर्द पत्नी के पैसों से घर की ज़िम्मेदारी उठाए तो क्या हो सकता है। इसलिए फ़िल्म में स्त्री और पुरूष की भूमिकाओं को पलट दिया गया है।

फ़िल्म महानगरीय जीवन के बदलते परिवेश की कहानी कहती है। फ़िल्म में स्त्री-पुरूष के आने वाले भविष्य की कल्पना है। फ़िल्म का नायक कबीर (अर्जुन कपूर) अपनी मां की तरह बन कर गृहस्थी का भार उठाना चाहता है। दूसरी ओर नायिका किया (करीना कपूर) अपने करियर में बड़ा मुकाम हासिल करना चाहती है। दोनों में प्रेम विवाह होता है। खाना पकाना, साफ-सफाई और घरेलू काम कबीर करता है। वह अपनी पत्नी के लिए सुबह कॉफी बनाता है और शाम को उसके घर आने की बाट जोहता है, खर्च के लिए बीबी से पैसे मांगता है और किया को खुश रखने की पूरी कोशिश करता है। इन दोनों के अलावा दो और अलग-अलग किरदारों के बहाने बाल्की ने समाज की नब्ज टटोलने की कोशिश की है। इनमें से एक है किया की माँ। सिंगल वुमेन मदर और दूसरे हैं कबीर के पिता। ये दोनों किरदार समाज के दो अलग-अलग सोच का प्रतिनिधित्व करते हैं। कबीर के पिता बेटे को बार-बार उसकी मर्दानगी याद दिलाते हैं। उन्हें शर्म आती है कि उनका बेटा कुछ नहीं करता और अपनी पत्नी के पैसों पर पल रहा है। वही दूसरी तरफ हैं किया की माँ। एन.जी.ओ. में काम करने वाली एक खुले विचारों की महिला। जो बेटी के हर फैसले में उसके साथ है। कबीर की बदौलत किया अपने करियर की बुलंदियों तक पहुँच जाती है और कबीर गृहस्थी बसाने में लग जाता है। वह पैसा भी कमाने की तब सोचता हैं जब घर बचाने की समस्या सामने आती है। कबीर की यही छोटी-छोटी मगर यूनिक बातें उसे सेलिब्रेटी बना देती हैं। देखते ही देखते कबीर महिला विमर्श पर होने वाले सेमीनारों का चेहरा बन जाता है। कंपनियाँ उसे अपने उत्पादों के विज्ञापन के लिए ब्रांड एम्बेसेडर बनाने लगती हैं। बस यहीं से स्वाभिमान के ट्रैक पर चल रही रेल गाड़ी में अभिमान आ जाता है। किया को कबीर का मशहूर होना हजम नहीं होता और फिर वही होता है जो आम घरेलू जिंदगी का हाल है।

रुद्रभानु प्रताप सिंह
मुंबई

स्त्री-पुरूष के संबंधों को दिखाने के लिए निर्देशक ने रेल का बखूबी प्रयोग किया है। किया और कबीर के घर का पूरा आर्किटेक्चर रेल के डब्बे की तरह है। कबीर के किचन से भी एक रेल गाड़ी डायनिंग टेबल तक जाती है। यही नहीं फ़िल्म के गाने भी रेल म्यूजियम में ही फ़िल्माए गए हैं। रेल यहां दांपत्य जीवन का प्रतीक है और पटरियाँ पति-पत्नी का। इंटरवल तक फ़िल्म की रफ्तार अच्छी है। कबीर और किया की बातचीत सुनने लायक है और इस दौरान कुछ ऐसे दृश्य देखने को मिलते हैं जिनमें मनोरंजन का स्तर ऊंचा है। इंटरवल के समय उत्सुकता जागती है कि विचार तो बेहतरीन है अब कहानी को आगे कैसे बढ़ाया जाएगा? पर दूसरे हाफ में फ़िल्म लड़खड़ाती

है और बढ़ी हुई अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतर पाती, इसके बावजूद दर्शकों को बांध कर रखती है।

यहां पर नई बात यह देखने को मिलती है कि कमाने वाला चाहे स्त्री हो या पुरूष अपने आपको सुपीरियर समझता है। कबीर और किया में विवाद होता है और किया के मुंह से ये बातें निकल ही जाती हैं। फ़िल्म में साफ दिखता है कि जलन-ईगो किसी लिंग की मोहताज नहीं है। घर संभालने वाली पत्नी अगर घर बैठे प्रसिद्ध होती है तो कामकाजी पति को जलन होना लाजमी है, लेकिन अगर पति घर संभाल रहा है तो कामकाजी पत्नी को भी उससे ईष्या हो सकती है। बाल्कि ने यह बात दिखायी है, लेकिन इसकी हिमायत नहीं की है। उन्होंने किया के किरदार को उतना बुरा नहीं होने दिया, जितना वह हो चली थी। और दूसरी तरफ उन्होंने कबीर को कुछ जरूरत से ज्यादा ही महान बना दिया है।

शुरुआत के हिसाब से फ़िल्म का अंत निराश करता है। स्त्री-पुरूष संबंध के इस नए बदलाव को सफलता पूर्वक कैसे आगे बढ़ाया जाया इसका कोई ठोस जवाब नहीं मिल पाता। कहानी का अंत बड़े फ़िल्मी ढंग से हो जाता है और यह कहने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि बाल्की लेखन के बजाय अपने निर्देशन से ज्यादा प्रभावित करते हैं। बतौर लेखक उनके पास सिर्फ विचार था जिसे दृश्यों के माध्यम से उन्होंने फैलाया। इस पर उन्हें खासी मेहनत करना पड़ी। कई छोटे-छोटे लम्हें उन्होंने बखूबी गढ़े हैं और फ़िल्म की ताजगी को बरकरार रखा। फ़िल्म में लीड कलाकारों का अभिनय भी दर्शकों को फ़िल्म से जोड़ कर रखता है। करीना कपूर का अभिनय बढ़िया है। उन्होंने अपने किरदार को ठीक से समझा और वैसा ही परफॉर्म किया। अर्जुन कपूर के साथ उनकी जोड़ी अच्छी लगती है। अर्जुन कपूर तेजी से सीख रहे हैं। कुछ दृश्यों में उनका अभिनय अच्छा तो कुछ में कमजोर रहा है। स्वरूप संपत लंबे समय बाद नजर आईं और वे अपनी उपस्थिति दर्ज कराती हैं। अमिताभ बच्चन और जया बच्चन का छोटे से रोल में अच्छा उपयोग किया गया है।

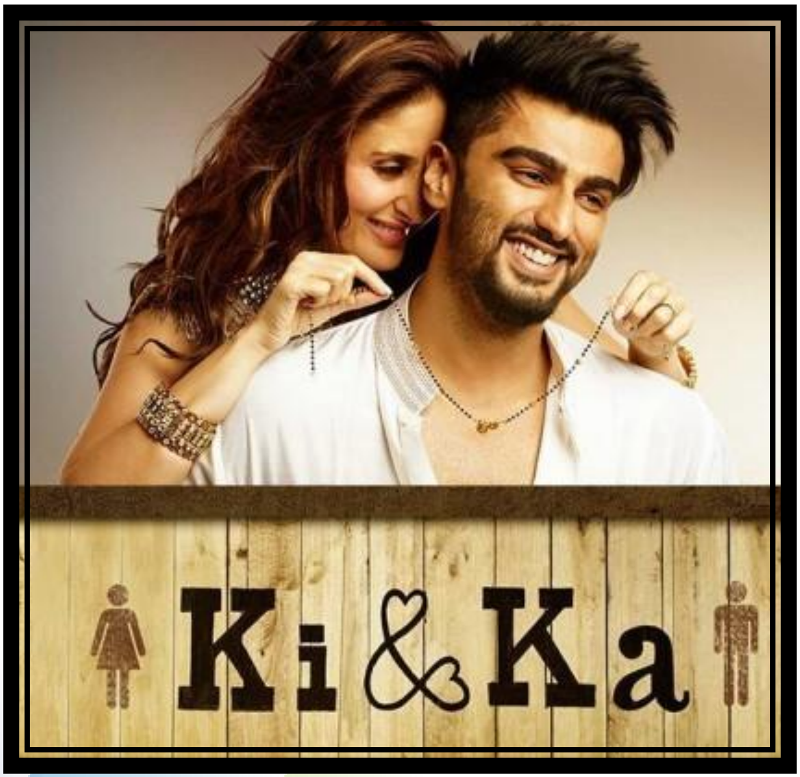

भट्ट कैंप के खोखले दावों का पुलिंदा है :

समीक्षा

'लव्ह गेम्स'

सिनेमाई दुनिया में महिलाओं और सेक्स पर दाव लगाने में भट्ट कैंप हमेशा से अव्वल रहा है। इस कैंप के हर सिनेमा पर महेश भट्ट की छाप और तर्क देखने को मिलती है। मसलन महिलाओं के पक्ष में आवाज बुलंद करना और उन्हें और ज्यादा से ज्यादा आधुनिक तथा आत्मनिर्भर बना के पेश करना। लेकिन इस अत्याधुनिकता की अनिवार्य शर्त होती है सेक्स। यही वजह है कि भट्ट कैंप महिला और सेक्स से जुड़े किसी भी विषय पर फ़िल्म बनाने से नहीं चूकता है। महेश भट्ट भी अक्सर अपने साक्षात्कार में कहते रहते हैं कि मेरी फ़िल्में समाज के दोहरे मापदण्डों को उजागर करती हैं। हम दुनिया को दिखाते हैं कि है पेज थ्री पार्टियों में मशगूल रहने वाली हाई सोसाइटी के दोनों चेहरे कितने अलग-अलग और कुरूप होते हैं।

इस बार भट्ट कैंप के फोकस में है वाइफ स्वैपिंग। वाइस स्वैपिंग यानी बीवी की अदला-बदली। मेट्रो सिटीज में आज कल यह टर्म बीमारी का रूप लेता जा रहा है। हालांकि यह चलन कितना वास्तविक और कितना काल्पनिक है ये कहना कठिन है। लेकिन अक्सर इसके बारे में बात की जाती है। वाइस स्वैपिंग पर आधारित फ़िल्म 'लव गेम्स' में वो सब कुछ है जिसकी तलाश भट्ट कैंप को रहती है... यानि औरत, अवैध संबंध, हाई सोसाइटी और भरपूर ड्रामा। फ़िल्म रिलीज होने से पहले भट्ट कैंप की तरफ से बहुत सारे दावे और वादे किए गए थे। कैंप का दावा है कि यह अब तक की सबसे बोल्ड, उत्तेजक और हॉट प्रेम कहानी है, जो लोगों के होश उड़ा देगी। फ़िल्म सभ्य समाज की परतें उधेड़ देगी, जिसे देख कर लोग स्तब्ध रह जाएंगे। लेकिन क्या किसी फ़िल्म में दर्जभर किसिंग सीन डाल देने भर से यह सब साबित हो जाता है? क्या किसी फ़िल्म को बोल्ड बनाने के नाम पर केवल फूहड़ अंग प्रदर्शन दिखा देने से सोसाइटी की धज्जियां उड़ाई जा सकती हैं?

> **सच्चाई यह है कि समाज के बदलते चेहरे को दिखाने का दावा करने वाले भट्ट कैंप की यह एक और कमजोर, कच्ची और कई मायनों में कमतर फ़िल्म है।**

सच्चाई यह है कि समाज के बदलते चेहरे को दिखाने का दावा करने वाले भट्ट कैंप की यह एक और कमजोर, कच्ची और कई मायनों में कमतर फ़िल्म है। फ़िल्म एक ऐसी सोसाइटी की कहानी कहती है, जहां के लोग गरीबी, रोजगार और रोज की मुश्किलों से बहुत ऊपर उठ चुके हैं। जिन्हें न तो भविष्य की फिकर हैं न समाज की। ये बहुत सक्षम लोग हैं और कुछ भी कर सकते हैं। रमोना रायचंद (पत्रलेखा) भी ऐसी महिला है। हाल में उसके पति का निधन हुआ है। पति की मौत का शक भी रमोना पर ही है, लेकिन कुछ साबित नहीं होता। रोमाना खुल के जीना चाहती है... बिलकुल आजाद...उन्मुक्त। पति की मौत के बाद रमोना सभी बंधनों से मुक्त हो जाती है। ऐसे में उसकी मुलाक़ात होती है सैम (गौरव अरोड़ा) से... एक अमीर बाप का एकलौता बेटा। सैम अंदर से मानसिक रूप से बड़ा परेशान रहता है। रमोना और सैम एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। रमोना सैम की मानसिक परेशानी को दूर करने के लिए एक खेल का आइडिया देती है। ये खेल है लव गेम्स। दोनों मिल कर पेज 3 पार्टीज में जाने लगते हैं और वहां आये शादी-शुदा जोड़ों को अपने प्यार के जाल में फंसाते हैं। दरअसल, ये प्यार नहीं बल्कि सेक्स का जाल है, जिसके जरिये ये दोनों अपने तन की प्यास बुझाते हैं और हार-जीत की बाजी भी लगाते हैं। सैम किसी ग्लैमरस-सी महिला को पटाता है और रमोना उस महिला के पति को। फिर दोनों इन कपल्स के साथ हमबिस्तर होते हैं...दोनों को इस काम में मजा आने लगता है, लेकिन जब एक दिन ऐसे ही लव गेम्स के जरिये सैम की मुलाकात अलीशा अस्थाना (तारा अलीशा बेरी) से होती है तो उसकी जिंदगी बदल जाती है। अलीशा पेशे से एक डॉक्टर है और उसका पति गौरव अस्थाना (हुसैन क्वाजरवाला) एक नामी क्रिमिनल लॉयर। गौरव, अलीशा संग आये दिन मार पीट करता है। उसे परेशान करता है, सबके सामने उसकी बेइज्जती करता है। सैम की अलीशा के प्रति हमदर्दी उसे उसके और करीब लाती, जो रमोना को बर्दाश्त नहीं होती। सैम, रमोना को छोड़ना चाहता है, लेकिन रमोना उसे उसके अतीत को लेकर ब्लैकमैल करने लगती है। एक दिन सैम, अलीशा को अपनी सारी सच्चाई बता देता है, जिससे अलीशा खफा हो जाती है और वह सैम को छोड़ देती है। अब अलीशा, सैम और अपने पति से बदला लेना चाहती है और वो इसके लिए रमोना के साथ मिल कर सैम-गौरव के मर्डर का एक प्लान बनाती है। लेकिन अंत समय पर सब प्लान के मुताबिक नहीं होता।

रुद्रभानु प्रताप सिंह
मुंबई

फ़िल्म की कहानी विक्रम भट्ट ने ही लिखी है। सेक्स और अवैध सम्बन्धों को आधार बनाकर उन्होंने पूरी कोशिश की है कि फ़िल्म को आकर्षक और दिलचस्प बनाया जा सके पर किसी मोड़ पर कहानी प्रभावित नहीं करती। इंटरवल से पहले तक की कहानी पर ज्यादा जोर देने की जरूरत नहीं पड़ती। दर्शक बड़ी आसानी से अंदाजा

लगा लेते हैं कि आगे क्या होने वाला है। रमोना जैसी लड़की से अगर कोई दूर जाने लगेगा तो वह क्या करेगी, इसका अंदाजा लगाना आसान है। ढेरों फ़िल्मों में इससे पहले ऐसे किरदार देखे जा चुके हैं। सस्पेंस और थ्रिलर बनाने के नाम पर रोमाना और अलीशा को मिलाना और फिर सैम-गौरव के मर्डर प्लान का प्लान बनाना भी कुछ अटपटा-सा लगता है। लेखक ने यह प्लाट अपनी सुविधा के लिए गढ़ा है। यह बात दर्शक भी समझ जाते हैं। विक्रम भट्ट ने अपना पूरा ध्यान पत्रलेखा को एक्सपोज करने में ही लगाया है। रमोना का एक्सपोजर दिखाने के चक्कर में विक्रम यह भूल गए हैं कि कानून और पुलिस नाम की चीज़ भी इस देश में मौजूद है। खून करना और उससे बच निकलना विक्रम के किरदारों के लिए बच्चों का खेल है। कुल मिलकर यही कह सकते हैं कि दिमाग केवल सैम और रमोना के पास है, बाकी तो सब बेवकूफ हैं। पूरी फ़िल्म में स्टाइलिश अंग्रेजी गालियों की भरमार है, जो दर्शकों को आकर्षित करने में नाकाम रही हैं।

निर्देशक विक्रम भट्ट ने एक्सपोजर की पूरी भरपाई पत्रलेखा के जरिये की है। ये वही पत्रलेखा हैं जो दो साल पहले भट्ट कैंप की एक फ़िल्म 'सिटिलाईट्स' में एक नॉन ग्लैमरस रोल में नजर आयी थीं। उस समय पत्रलेखा के किरदार की और अभिनय दोनों की जमकर तारीफ हुई थी। पर यहां पूरी फ़िल्म में रमोना का बस एक ही काम है, सैम पर लदे रहना। इस फ़िल्म में उनका ये ग्लैमरस चौंकाता है, लेकिन अपील नहीं करता। ठीक इसी तरह से सैम का किरदार भी है, जिसे गौरव अरोडम ने बस निभाने भर की कोशिश-सी ही की है, कोई खास प्रयास नहीं किया है। हां, इस बीच अलीशा के किरदार में तारा अलिशा बेरी ने जरूर कुछ अच्छे दृश्य दिये हैं। उनका अभिनय बीच-बीच में जरूर बांधता है। अभिनय के लिहाज से फ़िल्म बेहद कमजोर लगती है।

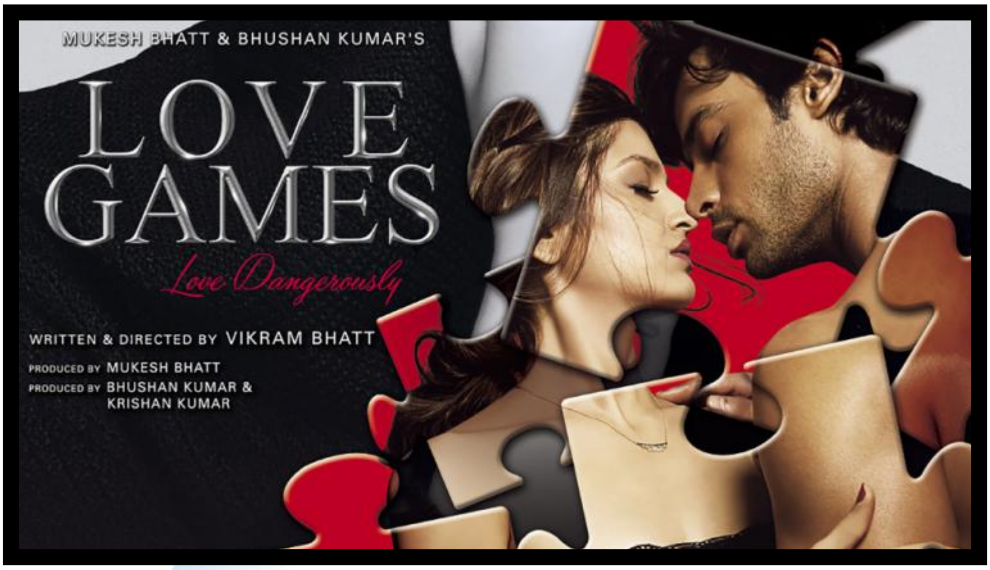

शोध

Correlation between Translation and Interpretation

The present research papers makes a modest attempt to explain the terms Interpretation and Translation and further studies the correlation between Translation and Interpretation with a practical analysis.

Dr. Uttam B. Parekar
Sahakar– Nagar
Wardha (M.S.)
Mob– 9921436640

Introduction:

Internet Service, Open Market Economy and unprecedented greater use of science and technology in man's day to day life have introduced competitive spirit in the world. Today there is a rat race for earning more money at the level of men and nations. Nations are organizing all the available resources and humans for production of things and enhance their market. To survive in the prevalent Class – Struggle men are always in search of new avenues and techniques to increase their earning capacity. Information technology has made available various information and advanced techniques on the computer screen and ambitious men are making the best use of them for personal gain.

English being lingua franca of the world and the language of knowledge, the career crazy people strive to master English language and update their knowledge of the latest discoveries and inventions. The less fortunate ones (who are ignorant of English language) are those who have no direct access to knowledge and they have to rely much on the available translation works in their language. The world has become a global village and today every situation is viewed as both local and global so as to exploit it for personal gain. In such a world situation Translation and Interpretation skills are on high demand.

Every language community has literary tradition underscoring the salient traits of the culture. It is a natural instinct in a man to know and understand the life around him and abroad. In this regard the knowledge of English language comes to man's help and enables him to understand the life, beliefs, attitudes and social relationships among the people of different races and religions. However, translation enriches the target language in terms of vocabulary, idiomatic use of language and syntactical structures. The present research papers makes a modest attempt to explain the terms Interpretation and Translation and further studies the correlation between Translation and Interpretation. This paper, furthermore, attempts to explore and expose the strengths and limitations of Translation techniques in the field of Literary

Translations with a practical analysis. Historical Perspective of Interpretation as a type of Translation: Interpreting, or "interpretation", is the facilitation of oral or sign-language communication, either simultaneously or consecutively, between two, or among more, speakers who are not speaking, or signing, the same language, at the very beginning the translator keeps both the source language and target language in mind and tries to translate carefully. But it becomes very difficult for a translator to decode the whole text literally; therefore he takes the help of his own view and endeavours to translate accordingly.

During the sixties the Uberseizungswissenchaft, or translation science began to establish itself as a discipline in the German speaking countries. During that time focus was laid on the linguistic aspects of translation process and product, and Translation is the activity was considered as the branch of applied linguistics. The undifferentiated concept of Translation is the activity of transposition of information, morphology of the source language, the syntax of the source language and semantic information from dictionaries of the source language into the target language. No definition of Translation can present in clear terms what it is because the concept of language itself is vague 'a system of arbitrary oral or written symbols used by a language community for social communication.'

Samuel Johnson says that in general, translators have sought to preserve the context itself by reproducing the original order of semantic elements and word order. When necessary, in reinterpreting the actual grammatical structure, he can take liberty to shift active voice structure into passive voice, or vice versa. The grammatical differences between "fixed-word-order" languages (e.g. English, French, German) and "free-word-order" languages (e.g., Greek, Latin, Polish, Russian) have been no impediment in this regard. The particular syntax (sentence-structure) characteristics of a text's source language are adjusted to the syntactic requirements of the target language.

Schleiermacher (1813) made a distinct between Interpreting as translation in business interaction and Translation in science and arts. The distinction based on the claim interpreting –as opposed to 'true' translating, is the most translating, is 'almost only a mechanical activity' and hence, presumably, of little intellectual and moral value. This distinction is wrong and of little help when applied to theoretical problems of translation. Kade and Leipzig School regarded Interpretation as a form of translation. Koller (1987) and Gadamer (1975) hold a view that every translation is a certain type of interpretation for the reason that both activities have the same aim 'bring about comprehension'. But Alex Biihler (2002) doesn't agree with this reformulation saying that the claims remains vacuous as long as we do not spell out the types of interpretations which are reorganized by the Translations and which others are not. Koller further states that Translation and Interpretation are two activities carried out under completely different circumstances, although from linguistic point of view there are some

overlapping areas. Translation studies deal with the systematic study of the theory, the description and the application of Translation.

Pochhacker and Salevsky share the view that it is very important to establish an interpreting science within the general theory of Translation and Interpretation (T&I) Studies, which would thus be composed of atleast two subdisciplines namely Transaction and Interpretation Studies. In her opinion Salevsky states that there cannot be a general Translation Theory without the inclusion of Interpretation. She says, “No less obvious is the fact that a general theory of Translation will be brought about only if it incorporates interpreting in such a way that validity of its findings is not compromised, and subclasses such as simultaneously interpreting are not regarded as case-specific exceptions, but rather are fully integrated into it. (Salevsky 1993:164)”

In 1963 Kade introduced the term Translation covering both translation and interpretation. Kade points out-

“Translation is categorized by the fixed and stable nature of both the sources and the target text (ST, TT). A translation may be carried out repeatedly, it may be corrected and checked over and over again; whereas in interpretation the ST is expressed only once and mostly orally and the TT can be controlled only partially and can hardly be corrected because of the time pressure conditioning interpretation, especially in the simultaneous form. (Riccardi, Alessandndra : P.77)”

The Paris School’s interpreting researchers, and primarily Seleskovitch, have always considered Interpretation and Translation as two different forms of same process. Explaining the difference between the two Seleskovitch says,

“The term Translation is used in a broad sense to indicate the activity of transferring a message into different language whereas Written Translation is used to indicate the transfer from one written text to another written text , and Interpretation to refer to the transmission of an oral or written message to an oral on in the target language.(pp. 81-82 Seleskovitch 1981)”

Interpretation is an interlinguistic mediated oral communication produced in a target language from the source language. The scholars of translation studies have considers, localized and settled the issue of Interpretation within the Translation Studies. A brief outline covering the most important features of the interpreting forms mentioned hereunder is necessary for better comprehension of the term

Liaison Interpreting (LI): It is the oldest and most natural form and is always performed in two language directions by the same person. Face-to-Face communication is the hallmark of LI. This form was used for businss or technical meetings. The popular forms LI to day are Community

Interpreting and Court Interpreting .

Consecutive Interpretation (CI) : There is longer time lag between the utterance of the original speech and the interpretation than in LI . In this form interpreter listens, analyses the message, memorises it, takes notes and then derives it in the target language . CI is used for impromptu speeches in the fields of commerce, technical, political speeches and multilateral negotiations .

Simultaneous Interpretations (SI): This form has been defined in cognative psychological terms as a complex human information processing activity composed of a series of independent skills. In this form the interpreter render the source text into the target language with a very short time lag after the speaker's output. Thanks to technical equipment by means of which interpreters hear the voice of the speaker and heard by the audience.

Media and Remote Interpreting: This form is developed out of SL. The fundamental differences between this form are that interpreters are more separated from the communicative event than in SL. They have less contact with the participants and their audience and the interpreter embraces even millions of people in this activity.

Interpreting has been studied by various disciplines and from different approaches it is steadily moving towards a growing theoretical and methodological autonomy. Today interpreting Studies is a complex subject whose scope of the study involves the neighbouring disciplines such as – applied linguistics, translation theories, psycholinguistics, pragmatics, semiotics, communication science, cognitive science, neurophysiology and neurolinguistics.

Alessandra Riccardi says "If the discipline of Interprerting Studies is to reach a fully autonomous status , it must establish its own research method and by resorting to the knowledge and research results of other disciplines , it can also assert itself as an interdisciplinary study with its own scientific profile ." (Alessandra Riccardi P. 83)

The scholars of Interpretation Studies finally concluded that the research and methodology of the subject encompasses many subjects related with the translating activity . They also conceded that the methodology and principles of translating could be formulated objectively .John Dodd's words pronounced during the 1986 symposium . The Theoretical and Practical Aspects of Teaching Conference Interpretation are still valid :

"Everybody agrees that conference interpreting is a craft and a profession but it is also known as an academic subject in its own right and as such it should have its own applicable , workable theory and methodology. This may well represent an interdisciplinary study – one which resorts to other fields of knowledge for support ,elucidation and analytical techniques , but, at the same time , it should be quiet autonomous from these other disciplines. (Dodds 1989.P.83)"

Translation Studies as an Independent Disciplines :

Alex Biihler is of the opinion that Interpretation & Translation activities have the same objective and follow the same procedure; therefore the task of interpreting elucidates what is involved in the task of translating. Axel says that the basic aims of the interpretation are enlisted under them. The attaining some of the following aims of the interpretation may be a precondition for reaching aims of Translation :

To list the aspect of concern in the text production and the intention of the ST:
Interpretation as the Indentification of communicative intensions.
Interpretation as the Identification of intensions of linguistic arrangements .
Interpretation as the Identification of an author's thoughts .
Interpretation as inferring of thoughts not explicitly stated.
Interpretation as the psychological explaination of communicative intentions.
Interpretation as the psychological explaination of an author's thoughts.

To note properties (verbal and cultural aspects) of the ST:
Interpretation as the Identification of the conventional meaning of linguistic elements.
Interpretation as structural description.

To form judgment about the ST.
Interpretation as the description of the effects of text.
Interpretation as judging the correctness of the context of a text.
Interpretation of determining the validity of argumentations contained in text.
Interpretation as rational reconstruction.
Interpretation as application.

Dwelling upon the multifarious nature of Translation, Jakobson (1971) classified Translation Activities into the following categories:

Intralingual Translation
Intersemiotic translation between verbal signs and signs of nonverbal semiotic systems.
Interlingual translation between signs of different languages (Jakobson, Roman:pp.223-39)

The Aims of Translating :

According to Vermeer and Reib (1991) Translating is an activity of interpretation. Translation is supply

of information from the ST to TT. Translation must contribute to the explaination of important linguistic utterances. Many times aspects related to nonverbal communication, idiomatic expression, cultural values and the author's personal beliefs make the task of translation very difficult. There is no scope for translating such utterances in the Target Language; in such cases the significance of the utterances are to be explained after their significance in the ST.

Certain linguistic utterances are so exclusive in the Source Language that they cannot be explained; in such cases by explaining the situation a translator should predict intention of the author of ST and must furnish information of this kind. Thus identification of the intention of the author of ST is of prime importance. Such explaination enables the interaction partner to infer the communicative intention of the ST. Highlighting this point Axel says "Communicative actions performed by means of one language have to be inferred by means of another language."(Axel Biihler P.65)

Translating must facilitate the task of interaction between speakers of different languages. Many a time there are certain culture specific utterances which are exclusive aspects of the culture reflected in the ST. In such cases the interaction partner not being acquainted with them cannot comprehend and enjoy them. As a remedy for this problem, a translator must provide in detail the background situation and the intention of ST and TT. Axel says that there cannot be one absolute translation of a literary work for the reason

"Different objectives connected with the the enterprise of translation do condition different kinds of translations. So the aim of giving information about the source text will lead to the production of more literal translations . While the aim of bringing about certain effects in the audience will lead to the production of free translations.(Axel BiihlerP.65)"

Difference between Translation and Interpreting:

One of the first articles dealing explitcity with the question of the differences between **Translation** and **Interpretation** was published by Harris in 1981. Following factors differentiate **Interpretation** from **Translation**:

- **Time**: Interpreting occurs in real time, at the end of the original speech in SL. The time at the disposal of the interpreter is very short as compared to that of the translator.
- **Environment**: Translation involves author, translator and reader who carry out their activities in different times and places and there is almost on contact between them. But in Interpretation the ST is closely linked to the circumstances in which it is delivered. The speaker is always physically present and can be heard and seen and he or she will influence the interpretation directly with his or her presence. TT is targeted upon a specific audience , and it is therefore

necessary to consider the audience and the specific qualities of that audience. The interpreter has to select a language register suitable for the audience. A TT of translation may be bought by anyone ,while an act of interpretation is performed only for a limited audience. Riccardi's following estimate of comparison between the roles of interpreter and translator is networthy: "Although both translator and interpreter play a mediating role between people , languages and cultures and their task is to make communication possible over linguistic and cultural barriers .Interpreters know that they are often seen as seen as an inevitable interference ,and the presence of the speaker indicates to all participants who is the intiator of the speech .Translators ,on the other hand ,become to a certain extent the authors of the new texts :`translation is not the production one text equivalent to another text ,but rather a complex paarocess of rewriting .'[Alvarez and vidal 1996 ].`The translation injects new life blood into a text bringing it new the attention of a new world of readers in a different language'[Bassnett 1996][86]"

Culture: A text to be translated is always written for people of the same country and the translated text is well anchored in the target culture with culture bound expressions and situations .But the interpreter's position is different .As soon as the conference the speech is over nothing will remain of his or her presence or work .Interpreters have a more effective role in overcoming possible culture-bound differences in SL. There are closer ties between the participants and interpreters. Interpreter must understand the communicative situation they are in and adapt to what is required. To suit the cultural aspect of the ST the interpreter can change language register. Whenever culture-bound discrepancies emerge in SL the interpreter's task is to clarify the possible misunderstanding or cultural misinterpretations. The skills of the interpreter extend beyond the linguistic and include the capacity to internalize and transmit the many nuances of a particular situation. Classifications, explainations and interruptions are often necessary steps in fulfilling the objective of effective communication in the TT.

Texts : The text to be translated is a complete and finished product, and it should be read prior to starting the work of translation. Lexical and syntactical choices must be decided upon first after an overview of the whole ST. but with regard to the text to be interpreted interpreted there is nothing fixed about it; it is dynamic and evolutionary. Martin Luther says that when a target language has lacked terms that are found in a source language, translators have borrowed those terms, thereby enriching the target language.

The ST develops at the speed decided by the speaker; and rarely does he take the interpreter into consideration. The interpreter must adapt to the type of text, pronunciation, intonation and delivery of every speaker.

Subjects: Many translation are literary, philosophical, historical and and cultural works. They make subsequent impact on the target culture. "Translation is intimately related to knowledge and especially to the manner in which that information is conveyed".(88)

Interpretation is used for all kind of subjects. The main objective of interpretation is multilingual communication.

Although both translators and interpreters are cultural mediators the differences between the two activities as pointed out by Harris are enlisted hereunder:

In Interpretation the fidelity commitment of the interpreter is directed towards the 'speaker's communicative intent' but in case of Translation the fidelity commitment is directed towards the 'author's stated text.'

The time pressure exerted on the interpreter by the oral modality, the environment, the communicative event create a completely different situation from the written translation.

The difference of relationship established between author, translator and reader and speaker, interpreter and audience.

Translators rarely know the author of the text and they have no contact with the readers; while interpreters are always in touch with both: speaker and audience. The listeners who react immediately to what is being said; and the interpreted text cannot be corrected or revised by someone else. Interpreters have the sole responsibility for what they are saying.

The most microscopic difference and similarities between the Translation and Interpretation as pointed out by Kalina (1998) are enlisted underhere:

Orality versus Scripturally.

The difference in terms of spatial, temporal and thematic unity for all participants in Interpreting in contrast to the spatial, temporal separation between the author, translator and reader in Translation.

The difference at the levels of preparation and specialized knowledge: the translator acquires specific knowledge about the subject matter during the translation process, while interpreters have at their disposal only the encyclopedia and specific knowledge they have acquired in advance.

Translators are more target oriented in their preparations and during the translation they can resort to external advice, to dictionaries, encyclopaedias, while interpreters have to prepare broad range of topics, not knowing exactly what they will have to interpret.

Translators have time at their disposal to recognize difficulties and solve them later, while interpreter cannot delay their solution.

Translated text can be corrected and revised and, more interestingly, the reader will never notice how difficult a translation task is. But in interpreting corrections are mostly noticed by listeners; they may disturb them and reduce the credibility of the interpreter.

A competent translator shows the following attributes:

A very good knowledge of the language, written and spoken, from which he is translating (the source language);

An excellent command of the language into which he is translating (the target language);

Familiarity with the subject matter of the text being translated ;

A profound understanding of the etymological and idiomatic correlates between the two languages; and

A finely tuned sense of when to metaphrase ("translate literally") and when to paraphrase, so as to assure true rather than spurious equivalents between the source – target language

प्रेमा स्वरूप आई
माधव ज्यूलियन
प्रेमा स्वरूपा आई वात्सल्यसिंधु आई।
बोलाऊ टूज आता मी कोणत्या उपायी?

नाही जगत झाली आबाळ या जिवाची,
तुझी उणीव चित्ती आई, तरीहि जाची,
चित्ती तुझी स्मरेना काहीच रूपरेखा,
आई हवी म्हनूनी सोडीन जीव हेका.

ही भूक पोरक्याची होई न शांत आई
पाहुनिया दुज्यांचे वात्सल्य लोचनांही
वाटे इथून जावे, तुझ्यापुढे निजावे
नेत्री तुझ्या हसावे, चित्ती तुझ्या ठसावे.

Love Incarnate Mother
Madhav Julien
Dear Mother! Thou are incarnation of love, and Ocean of Affection.
What other metaphor can I use to name you?
Never I have ever been denied of worldly pleasures,
O Mother! But your departure from this world always gnaws at my heart,
Neither of your reminiscence I recall, nor can I draw your sketch,
My stubborn heart as ever persistently longs to meet you.

Love famished your orphan, O Mother!, is still agitated
Beholding the scenes of love doted on others
I feel like rushing to get myself laid before you
How wondrous! Your eyes reflecting my smiles and heart
Sheltering all my reminiscence.(child and mother have concordant bond of love in Marathi culture)
God knows, when I will feed your teats,
Your rocking heart-beats strike gently me to sleep?
Take another birth and I'll be born of you
O Mighty One! Don't be ill-disposed to my aspiration : the only long cherished wish!

texts.

Mario Pei says that a competent translator is not the only bilingual but bicultural. A language is not merely a collection of words and of rules of grammar and syntax for generating sentences, but also a vast interconnecting system of connotations and culture references.

Preliminary Comments on the Translation:

Time: The above work of transposing the source text of Marathi poem into the target text of English falls under the category of Translation rather than Interpretation because the product involves the author, translator and readers. The ST was written in the long past furthermore the author of the TT is not acquainted with the ST through the original author. The time lag between the ST and TT is greater in the sense that both activities have been separated by two points of time.

Environment: The ST is not closely linked to the circumstances in which the TT is made hence the above work of transposing cannot be Interpretation. The situation covered in the ST refers to the trauma suffered by the poet on sad demise of his mother which subjects him to the orphanhood.

Culture: In Marathi culture god is locked upon as mother for he sustains child's life with the life nourishing milk of her own. The ST is the expression of the poet's passionate nostalgic longing to experience once again childhood life on the lap of dear departed affectionate mother. The ethos of the ST soaked in Marathi culture.

Texts: The ST is a complete text and a finished product in the form of a Marathi poem. The ST has many lexical and syntactical elements to be explained to clarify their semantic value in the ST. Some of the elements which need to be elaborately discussed are the Similes : 'प्रेमा स्वरूप आई' 'वात्सल्यसिंधु आई' the Idiom:'ही भूक पोरक्याची','वक्षी तुझ्या परी हे केंव्हा स्थिरेल डोके'; **Juxtposition** between the lines: 'चित्ती तुझी स्मरेना काहीच रूपरेखा' and 'नेत्री तुझ्या हसावे,चित्ती तुझ्या ठसावे'. These elements are culture specific communicative intensions of the ST author, and they are to be explained to communicate image of a mother in Marathi child's mind. Word order is ST has to be retained in order to preserve the semantic effect of the ST in the TT eg.

ही भूक पोरक्याची होई न शांत आई	Love famished your orphan, O Mother!, is still agitated
पाहुनिया दुज्यांचे वात्सल्य लोचनांही	Beholding the scenes of love doted on others.

Subjects: The subject matter of the poem is Marathi culture specific in the sense that mother is looked upon as a worshipping deity in Marathi culture the image f god is projected as a Mother 'माऊली'। With the sad demise of dear mother the poet feels uprooted and finds himself in the grief of orphanhood. The poet nostalgically remembers the departed mother and intensely wishes to experience, once more, the life f childhood on the laps of his mother.

Conclusion: A work of translation is a product of translating activity. Translation involves the author, translator and reader in its activity, whereas Interpretation involves the source speaker, interpreter and audience in its activity. It is normally a mere interpretation assignment, and not an argued interpretation. A translation put forth the perspectives of the author of the ST.it is not merely a report about it. The aims of the activities of the translation and the interpretation are the same as listed hereunder:

Identification of the communicative intensions of the author of the ST.

Identification of his or her thoughts.

Identification of conventional meaning of elements of the source language.

Adaption of the ST for groups of speakers of the target language.

Literary translation must accomplish the above sited four aims. Besides this, it must transpose the ST into the TT with elaborate details of the 1-time 2-environment 3-culture 4-texts 5-subjects. TT should a complete rendering of the ST and it has to be grammatically correct in the target language. A competent translator is not only bilingual but bicultural. A language is not merely a collection of words and of rules of grammar and syntax for generating sentences, but also a vast interconnecting of connotations and cultural references.

Works Cited

Riccardi, Alessandndra: Translation and Interpretations, in Translation Studies (Perspectives on an Emerging Discipline);, Ed. Alessandra Riccardi, Cambridge University Press, Cambridge House New Delhi:2002,P.77)

Salevsky, Heidemarie 1992, Dolmetschen: Objeckt der Obersetzungs oder Dolmetschen Wissenschaft, in Wissenschaftliche Grundlagen der Sprachmittlung Ed. By Heidemariie Salevsky, franfurt am Main: Peter, pp.85-117

Seleskovitch, Danica 1981: L'Enseignment de I'interpretation, in Delisle 1981:23-46

Dodds, John 1989: Linguistic Theory Construction as a Premise to a Methodology of Teaching Interpretation, in Gran and Dodds 1989:17-20

Alex Biihler: Translation and Interpretation in Translation Studies (perspectives on an emerging discipline); Ed. Alessandra Riccardi Cambridge University Press, Cambridge House New Delhi:2002,P.56-76)

Jakobson, Roman: On Linguistic Aspects of Translation, selected writings volume 11: the Hague and Paris: Mouton pp.232 -39

Alvarez, Roman and Vidal, M. Carmen affrica 1966: Translating : A Political Act, in Alvarez and Vidal 1966 B: pp 1-9

Snell-Hornby, Mary 1988: Translation Studies: an Integrated Approach, Amsterdam and Philadelphia: John Benjamins.

Bassnett, Susan 1996: The Meek or the Mighty: reappearing in the role of the translator , in Alvarez and Vidal 1966b: pp. 10-24

Holmes, James S 1988(1972): The Name and the Nature of the Translation Studies, (Introduction by Raymond Van den Broeck), Amsterdam and Atlanta : Rodopt: pp. 67-80

Harris, Brian 1981 : Prolegomenon to a study of the Differences between Teaching Translation and Teaching Interpretating; Udine: Campanotto.

Sasuure, Ferdinand D: introduction to Linguistics

ज्युलीयन, माधव: प्रेमा स्वरूप आई.

RESEARCH

शोध

मराठी क्रियारूप विश्लेषक प्रणाली का विकास

शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य मराठी भाषा की क्रिया के मूल रूपों को प्रदर्शित करने एवं उन रूपों की विशेषताएं बताने के लिए किया गया एक प्रयास है। इसमें एक प्रणाली का विकास किया गया है, जिसका नाम 'मराठी क्रियारूप विश्लेषक' है।

प्रफुल्ल भगवान मेश्राम
पीएच.डी. शोधार्थी
Email-id-
pmeshram87@gmail.com

सारांश

शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य मराठी भाषा की क्रिया के मूल रूपों को प्रदर्शित करने एवं उन रूपों की विशेषताएं बताने के लिए किया गया एक प्रयास है। इसमें एक प्रणाली का विकास किया गया है, जिसका नाम **'मराठी क्रियारूप विश्लेषक'** है। इस प्रणाली के विकास के लिए डाटाबेस की आवश्यकता होगी जिसके लिए एम.एस.एक्सेस का प्रयोग किया गया है। इस प्रणाली में कोडिंग करने के लिए सी. शार्प प्रोग्रामिंग भाषा का प्रयोग किया गया है, जिसमें यूनिकोड के देवनागरी में काम करने की सुविधा है। 'मराठी क्रियारूप विश्लेषक' प्रणाली का उपयोग प्राकृतिक भाषा संसाधन जैसे- मशीनी अनुवाद, पाठ संसाधन, सूचना प्रत्यानयन प्रणाली आदि क्षेत्र में होगी ।

शोध का उद्देश्य

मराठी भाषा की क्रिया के मूल रूप एवं उनसे जुड़ने वाले प्रत्ययों का अध्ययन विश्लेषण करना
क्रिया रूप एवं प्रत्ययों का मशीन द्वारा संश्लेषण करना
मराठी भाषा के लिए क्रिया रूप विश्लेषक का विकास करना
मराठी भाषा से संबंधित अन्य भाषाओं में अनुवाद करने के लिए इस प्रणाली का विकास करना

शोध प्राविधि

इस शोध में मात्रात्मक एवं गुणात्मक शोध प्राविधि का प्रयोग किया गया है। मात्रात्मक शोध प्राविधि द्वारा मूल क्रिया रूप एवं उससे जुड़ने वाले प्रत्यय को संख्याओं के आधार पर संकलित किया गया है। मराठी भाषा से संबंधित 37 मूल क्रिया रूप एवं 48 प्रत्ययों का अध्ययन किया गया है। इसमें द्वितीयक सामग्री के रूप में विभिन्न पुस्तक, समाचार पत्र और शोध ग्रंथों का उपयोग किया गया है।

उपयोगिता

'मराठी क्रियारूप विश्लेषक' प्रणाली की उपयोगिता मराठी भाषा से संबंधित प्राकृतिक भाषा संसाधन के क्षेत्र जैसे- मशीनी अनुवाद, सुचना प्रत्यानयन प्रणाली, पाठ संसाधन आदि क्षेत्रों में होगी।

शोध का विस्तार एवं सीमाएं

इस शोध-पत्र में केवल कुछ धातुओं को तथा कुछ कियारूपों को लेकर ही काम किया गया है सभी क्रियारूपों को नहीं लिया गया। यह प्रारंभिक कार्य हैं जिसमें और अधिक काम किया जा सकता है किंतु समय के अभाव के कारण इस पर अधिक काम करना अभी संभव नहीं था तथा आगे इस पर मैं या कोई भी भाषाविज्ञान, भाषा प्रौद्योगिकी, संगणकीय भाषाविज्ञान से संबंधित विद्यार्थी या शोधकर्ता इस विषय से संबंधित क्रिया को लेकर इसका शब्द, पदबंध तथा वाक्य स्तर पर भी विकास कर सकता है। इस लघु शोध के द्वारा विकसित 'मराठी क्रिया रूप विश्लेषक' प्रणाली की कुछ सीमाएं हैं जो निम्नानुसार हैं-

इस शोध द्वारा विकसित 'क्रिया रूप विश्लेषक' प्रणाली के द्वारा एक क्रिया के कितने रूप बन सकते हैं इसे बताया जाएगा। इसके लिए प्रणाली को इनपुट के रूप में क्रिया के मूल रूप (धातु) को दिया जाएगा, जिसके कुल 35 क्रियारूप दिखाएगा। इसमें से जिस क्रियारूपों पर क्लिक करेंगे, उस क्रियारूप से संबंधित काल, लिंग, वचन, पुरुष आदि विशेषताओं को जान सकेंगे। इसके अतिरिक्त अन्य सूचनाएँ , जैसे- वृत्ति, पक्ष आदि के बारे में सूचना नहीं प्राप्त होगी। यदि इनपुट दिया हुआ शब्द डाटाबेस में नहीं होगा तब उस शब्द के रूप नहीं बताएगा। अतः इस पर और विस्तार से काम किया जा सकता है।

प्रस्तावना

एक तरफ भाषा संपूर्ण मानव जीवन में वैयक्तिक और सामाजिक अस्तित्व से जुड़ी रहती है जो मानव की सभ्यता एवं संस्कृति की परिचायक होती है, तो दूसरी ओर प्रौद्योगिकी अपने मौलिक विकास में मनुष्य के इतिहास, अवसर और आवश्यकतानुरूप शोध व अविष्कारों को करने की क्षमता से जुड़ा होती है। भाषाविज्ञान भाषा का एक व्यवस्थित, संरचित, वस्तुनिष्ठ अध्ययन करता है। 'भाषाविज्ञान' 'प्रौद्योगिकी' के योग से नए विषय 'भाषा प्रौद्योगिकी' (Language Technology), संगणकीय भाषाविज्ञान (Computational Linguistics) के रूप में प्रकट हुए हैं, जो भाषाविज्ञान की अनुप्रयुक्त शाखा के रूप में माने जाते हैं। 'भाषा प्रौद्योगिकी' एक अंतरानुशासनिक विषय है जिसके केंद्र में 'भाषा' शब्द को भाषाविज्ञान से लिया गया है, वही 'प्रौद्योगिकी' भूमंडलीकरण की उपज उपभोक्तावादी प्रवृत्ति के माँग की देन है। भाषा को प्रौद्योगिकी से जोड़ने की अवधारणा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद शुरू होती है, जब मित्र राष्ट्र और सौराष्ट्र के सैनिकों को प्रशिक्षण देने की बात आती है तो भाषा एक समस्या उत्पन्न कर देती है। तब से ही भाषा को मशीन से जोड़कर उपयोग में लाने की अवधारणा जन्म लेती है। भाषा प्रौद्योगिकी के माध्यम से प्राकृतिक भाषाओं को मशीन (कंप्यूटर) में स्थापित करने का कार्य किया जा रहा है जिसमें देश और विदेश के कई संस्थान कार्यरत है। भाषा एक जटिल संरचना होने के कारन इसे मशीन में स्थापित करना बहुत ही कठिन कार्य है।

भाषाविज्ञान भाषा में पाई जानेवाली विभिन्न इकाइयों एवं उनकी व्यवस्था की वस्तुनिष्ठ व्याख्या करता है। भाषाविज्ञान ने पिछले 150 वर्षों में महत्त्वपूर्ण प्रगति की है। इस क्रम में भाषा विश्लेषण से संबंधित अनेक सिद्धांतो एवं मॉडलों का विकास हुआ है। इन सिद्धांतो एवं मॉडलों ने भाषिक विश्लेषण को सूक्ष्मता एवं गहनता प्रदान की है। इस कारण विश्लेषण से प्राप्त भाषिक ज्ञान के अनुप्रयोग के क्षेत्रों में व्यापकता एवं वैविध्य का समावेश हुआ है।

आधुनिक युग तकनीकी का युग है जिसमें कंप्यूटर, इंटरनेट एवं मोबाइल फोन ने संचार एवं ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में क्रांति पैदा कर दी है। इन साधनों के आगमन से भाषा अब दो या अधिक व्यक्तियों के बीच केवल सामान्य व्यवहार की वस्तु नहीं रही, बल्कि इसके साथ एक तकनीकी आयाम भी जुड़ गया है। इस तकनीकी आयाम ने मानव तथा मशीन के बीच भाषिक संप्रेषण संबंधी चिंतन के एक नए क्षेत्र का निर्माण किया है, जिस पर वर्तमान में वैश्विक स्तर पर कार्य चल रहा है। इस कार्य के लिए भाषा संबंधी ज्ञान को मशीन में स्थापित करते हुए अनेक टूल्स, प्रणालियों एवं साफ्टवेयरों का विकास किया जा रहा है। इसके लिए प्रोग्रामिंग भाषाओं एवं डाटाबेस प्रबंधन प्रणाली का ज्ञान होना आवश्यक है।

भाषिक ज्ञान के तकनीकी अनुप्रयोग का अर्थ संगणक या संगणकीय मशीनों में भाषिक ज्ञान के अनुप्रयोग से है, जिससे उन मशीनों का प्रयोग भाषा व्यवहार के विविध क्षेत्रों में किया जा सके। इस कार्य को तकनीकी रुप से 'प्राकृतिक भाषा संसाधन' (Natural Language Processing : NLP) कहा जाता है।

मानव भाषाओं की व्यवस्था को मशीन में स्थापित करना अत्यंत जटिल कार्य है, क्योंकि (संगणक) मशीन द्वारा जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है, उसे मशीनी भाषा कहते हैं। इस भाषा में सभी प्रकार की सूचनाओं को '0' और '1' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिसको समझना साधारण मनुष्यों के लिए असाध्य है और मशीनों द्वारा मानव भाषाओं को सीधे-सीधे समझ पाना संभव नहीं है। इस समस्या के कारण मानव मशीन के बीच आदेशों एवं कार्यों के आदान-प्रदान के लिए पिछले तीन-चार दशकों में कुछ विशेष प्रकार की भाषाओं का विकास किया गया है जिन्हें सामान्यतः 'उच्चस्तरीय भाषाएं' (High Level Languages) या 'प्रोग्रामिंग भाषाएं' (Programming Languages) कहा जाता है। यह भाषाएं प्रयोगकर्ता को कुछ विशिष्ट संरचनाओं के माध्यम से आदेश देने की सुविधा प्रदान करती हैं। इनके माध्यम से मानव भाषाओं के ज्ञान को समुचित मात्रा में एवं सुव्यवस्थित रूप से स्थापित करते हुए मशीनों या संगणकों को मानव भाषाओं को समझने में सक्षम बनाया जा सकता है।

मराठी भाषा संस्कृत से प्रभावित है। मराठी भाषा के वाक्यों में क्रिया केंद्रीय घटक होती है जो पूरी वाक्य रचना को नियंत्रित करती है। क्रिया के द्वारा ही वाक्य में किसी कार्य को करने या होने, गति, अस्तिव, भाव, व्यक्ति व वस्तु आदि का बोध होता है, या इनके बारे में सूचना

मिलती है।

जैसे – मी जातो.

तू चल.

सीता ने आंबा खाल्ला.

परमेश्वर आहे.

उपर्युक्त वाक्यों में 'जातो', 'चल', 'खाल्ला', 'आहे' आदि क्रियाएँ हैं।

भाषा में स्वनिम, रुपिम, शब्द, पदबंध, उपवाक्य एवं प्रोक्ति भाषिक इकाइयाँ हैं, जिनमें स्वनिम को छोड़कर शेष सभी इकाइयाँ अर्थ को धारण करती है। भाषाविज्ञान में इन सभी का विश्लेषण करते हुए प्रत्येक स्तर पर प्राप्त भाषिक इकाइयों और उनकी व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है। इस ज्ञान को मशीन में स्थापित करने के लिए इसे तार्किक अभिव्यक्तियों (Logical Expressions) में ढाला जाता है। इसके लिए किसी न किसी संगणकीय व्याकरणिक फ्रेमवर्क (Computational Grammatical Framework) की आवश्यकता पड़ती है। इस भाषिक ज्ञान को मशीन में स्थापित करने की दो विधियाँ है- समस्त ज्ञान को एकीकृत रूप से स्थापित करना अथवा प्रत्येक भाषिक इकाई या भाषिक स्तर से जुड़े ज्ञान को स्थापित कर अलग-अलग टूल्स का विकास करना और बाद में सभी का आवश्यकता के अनुसार एक स्थान पर प्रयोग करना।

मशीन में मानव भाषाओं के ज्ञान को स्थापित करने की दो विधियाँ है :

कॉर्पस आधारित विधि (Corpus-based Method) और

नियम आधारित विधि (Rule-based Method)।

कॉर्पस आधारित विधि द्वारा किसी भाषा के भाषिक ज्ञान को मशीन में स्थापित करने के लिए सर्वप्रथम भाषा-व्यवहार के सभी क्षेत्रों से उस भाषा के प्रामाणिक पाठों को संग्रहीत किया जाता है जिसमें लाखों वाक्य होते हैं। इसके पश्चात विविध भाषिक एवं सांख्यिकीय युक्तियों का प्रयोग करते हुए उनके माध्यम से मशीन को संबंधित भाषा में संसाधन के योग्य बनाया जाता है। नियम आधारित विधि में भाषिक इकाइयों (मुख्यतः शब्द स्तरीय इकाइयों) को संग्रहीत किया जाता है और उन्हें संसाधित करने में सक्षम बनाया जाता है। इस कार्य के लिए प्रोग्रामिंग भाषा और डाटाबेस प्रबंधन प्रणाली की आवश्यकता होती है।

क्रिया वाक्य में केंद्रीय घटक होती है जो पूरी वाक्य रचना को नियंत्रित करती है, जिसके द्वारा किसी कार्य के होने या करने, किसी व्यक्ति, वस्तु, भाव आदि के बारे में सूचना प्राप्त होती है। क्रिया के मूल रूप को 'धातु' कहा जाता है। मराठी में धातु के साथ 'णे' प्रत्यय जुड़कर जिस क्रियारूप का निर्माण होता है उसे क्रिया का साधारण रूप कहा जाता है जिसके माध्यम से कोश में उसका अर्थ जान सकते है। एक ही धातु या क्रिया के मूल रूप को विभिन्न प्रत्यय जुड़कर उसके अनेक क्रिया रूप बनाएँ जा सकते हैं। क्रिया के मूल रूप के साथ जब कोई प्रत्यय जुड़कर क्रियारूप का निर्माण किया जाता है तब उस क्रियारूप के द्वारा अलग-अलग व्याकरणिक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।

जैसे – 'जा' (मूल रूप) राम जातो.

इस वाक्य में 'जातो' क्रिया है जिसमें 'जा' धातु (मुख्य क्रिया), तो (प्रत्यय) जिसमें 'ओ' से कई व्याकरणिक सूचनाएँ मिलती हैं – जैसे – काल (वर्तमान), लिंग (पुल्लिंग), वचन (एकवचन), पक्ष (अपूर्ण पक्ष) आदि सूचनाएँ मिलती हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र में 'मराठी क्रियारूप विश्लेषक ' प्रणाली के विषय में स्पष्ट किया गया है कि इसका विकास किस प्रकार से किया जा सकता है और उसका क्या उपयोग होगा? इसके लिए आधुनिक युग की अत्यधिक सशक्त प्रोग्रामिंग भाषा 'सी शार्प' (C#) का प्रयोग किया गया है जिसमें यूनिकोड के देवनागरी में काम करने की सुविधा है, इसके अतिरिक्त डाटाबेस निर्माण हेतु माइक्रोसॉफ्ट के 'एम.एस.एक्सेस' का प्रयोग किया गया है क्योंकि इसमें कार्य करना अत्यंत सरल एवं संगणक से जुड़े विद्यार्थी भी इसमें काम कर सकते है। इसका विकास निम्न रूप से किया गया है-

क्रियारूप विश्लेषक के लिए डाटाबेस का निर्माण

किसी भी सॉफ्टवेयर एप्लीकेशन के विकास और कार्यप्रणाली में डेटाबेस की अहम भूमिका होती हैं। यह एप्लीकेशन के लिए एक Backend के रूप में कार्य करता है अर्थात प्रयोक्ता को डेटाबेस के कार्यप्रणाली के बारे में न तो कोई जानकारी होती है और न ही कोई जानकारी मिलती है लेकिन किसी भी विषय से संबंधित सूचना प्रयोक्ता को डेटाबेस से ही प्राप्त होती हैं।

प्रस्तुत 'मराठी क्रिया रूप विश्लेषक' प्रणाली में डेटाबेस की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इस प्रणाली के लिए डेटाबेस की डिजाईनिंग MS-Accese2007 में की गई है जो निम्न प्रकार से है -

प्रोग्राम का विकास

Table1								
ID	RootWord	roottype1	suffix	sftype	tense	Gender	Person	Numbur
1	वाच_1	1	तो	a	साधा वर्तमान काल	पुल्लिंग	प्रथम, तृतीय पुरुष	एकवचन, बहुवचन
2	काढ_1	1	ते	a	साधा वर्तमान काल	स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग	प्रथम, तृतीय पुरुष	एकवचन, बहुवचन
3	बस_1	1	तोस	a	साधा वर्तमान काल	पुल्लिंग	द्वितीय	एकवचन
4	चल_1	1	तेस	a	साधा वर्तमान काल	स्त्रीलिंग	द्वितीय	एकवचन
5	उठ_1	1	ता	a	साधा वर्तमान काल	पुल्लिंग, स्त्रीलिंग	द्वितीय	बहुवचन
6	मार_1	1	तात	a	साधा वर्तमान काल	स्त्रीलिंग,नपुंसकलिंग	अन्य पुरुष	बहुवचन

प्रस्तुत 'मराठी क्रियारूप विश्लेषक' प्रणाली का विकास करने के लिए आधुनिक युग की अत्यधिक सशक्त प्रोग्रामिंग भाषा 'सी शार्प' (C#) का प्रयोग किया गया है जिसमें यूनिकोड के देवनागरी में काम करने की सुविधा है। साथ ही डाटाबेस बनाया गया है जिसे कोड के माध्यम से कनेक्ट किया गया है । इस प्रणाली के विकास के लिए पाँच टेक्स्ट बॉक्स (Text Box), एक लिस्ट बॉक्स (List Box) तथा तीन कमांड बटन का प्रयोग किया गया हैं। पाँच लेबल कंट्रोल का प्रयोग कर टेक्स्ट बॉक्स के लिए क्रमशः इनपुट क्रिया (Txtbox1), विशेषता1(Textbox2), विशेषता2(Textbox3), विशेषता3(Textbox4), विशेषता4 (Textbox5) नाम दिए गए हैं। तीन कमांड बटन लिए गए जिसमें उनके टेक्स्ट प्रॉपर्टि को बदल कर क्रमशः 'रूप देखें', 'खाली' करे तथा 'समाप्त करे' नाम गए हैं। एक लिस्ट बॉक्स का प्रयोग किया गया है जिसमें यदि 'टेक्स्ट बॉक्स 1' में 'धातु'(क्रिया का मूल रूप) इनपुट देंगे तो इनपुट किए गए शब्द के रूप दिखेंगे। सभी टेक्स्ट बॉक्स, तीन कमांड बटन को संक्षेप में निम्नलिखित रूप से स्पष्ट किया गया हैं –

टेक्स्ट बॉक्स 1 – प्रणाली को इनपुट देने के लिए इसका प्रयोग किया गया है।

टेक्स्ट बॉक्स 2- लिस्ट बॉक्स के क्रियारूप पर क्लिक करने पर इसमें काल के विषय में सूचना प्राप्त होगी।

टेक्स्ट बॉक्स 3- लिस्ट बॉक्स के क्रियारूप पर क्लिक करने पर इसमें पुरुष के संदर्भ में सूचना को दिखाएगा।।

टेक्स्ट बॉक्स 4- लिस्ट बॉक्स के क्रियारूप पर क्लिक करने पर इसमें पुरुष के संदर्भ में सूचना मिलेगी।

टेक्स्ट बॉक्स 5- इसमें लिस्ट बॉक्स के क्रियारूप पर क्लिक करने पर पुरुष के संदर्भ में सूचना प्राप्त होगी।

कमांड बटन 1(रूप देखें) – इसका नाम 'रूप देखें' रखा गया हैं जिसमें क्लिक करने पर इनपुट किए गए क्रिया के मूल रूप के क्रियारूपों को लिस्ट बॉक्स में प्रदर्शित करेगा।

कमांड बटन 2(खाली करें) – इसका नाम 'खाली करें' रखा गया हैं जिसमें क्लिक करने पर सभी टेक्स्ट बॉक्स को खाली कर देगा।

कमांड बटन 3(समाप्त करें) – इसका नाम समाप्त करें रखा गया हैं जिसमें क्लिक करने पर प्रोग्राम से बाहर आ जाएँगे।

लिस्ट बॉक्स – लिस्ट बॉक्स का नाम l1 रखा गया है जिसमें सभी क्रियारूपों को दिखाया जाएगा जिसमें से किसी पर भी क्लिक करने पर टेक्स्ट बॉक्स 2, टेक्स्ट बॉक्स 3, टेक्स्ट बॉक्स 4, टेक्स्ट बॉक्स 5 में क्रमशः काल, लिंग, पुरुष, वचन आदि को बताया जाएगा।

प्रस्तुत प्रणाली के डिजाइन के लिए visual studio 2010 का प्रयोग किया गया है तथा कोडिंग के लिए सी शार्प प्रोग्रामिंग भाषा का उपयोग किया गया है।

DESINING FORM

इस प्रणाली को विकसित करने के लिए प्रणाली का निम्न प्रकार से प्रारूप बनाया गया है-

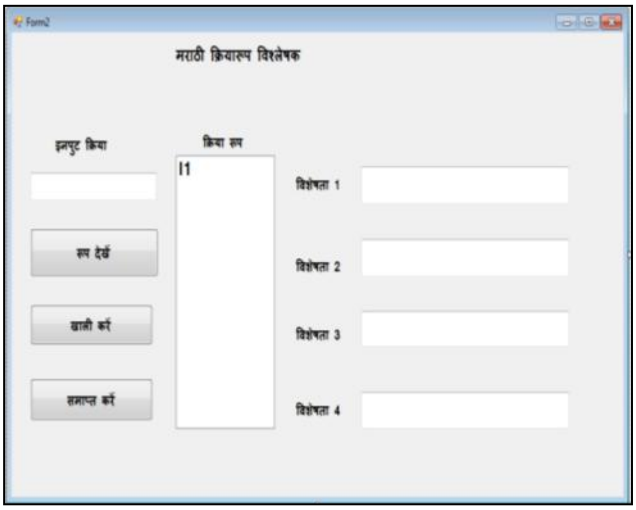

इस 'मराठी क्रियारूप विश्लेषक ' प्रणाली द्वारा इनपुट के रूप में 'टेक्स्ट बॉक्स 1' (इनपुट क्रिया) में क्रिया के मूल रूप को दिया जाएगा। इसके पश्चात 'रूप देखें' बटन पर क्लिक करने पर लिस्ट बॉक्स में इनपुट दिए गए 'मूल रूप' के सभी रूपों को दिखाएगा। जैसे निम्न प्रकार से प्रारूप में देख सकते है –

RUNNING FORM

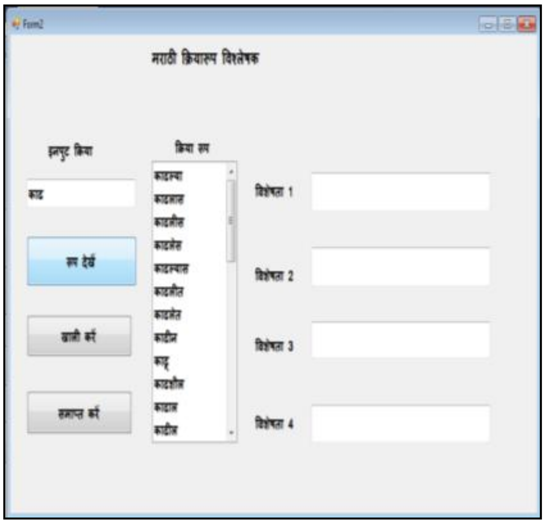

'रूप देखें' बटन पर क्लिक करने पर लिस्ट बॉक्स में इनपुट दिए गए 'मूल रूप' के सभी रूपों को दिखाएगा इसमें से प्रदर्शित जिस किसी भी रूप पर क्लिक करेंगे तो उस रूप से संबंधित विशेषताएँ - काल, लिंग, पुरुष, वचन आदि को 'टेक्स्ट बॉक्स 2'(विशेषता 1), 'टेक्स्ट बॉक्स 3'(विशेषता 2), 'टेक्स्ट बॉक्स 4'(विशेषता 3), 'टेक्स्ट बॉक्स 5' (विशेषता 4) बताएगा जो निम्न प्रारूप में देखने पर स्पष्ट होता है-

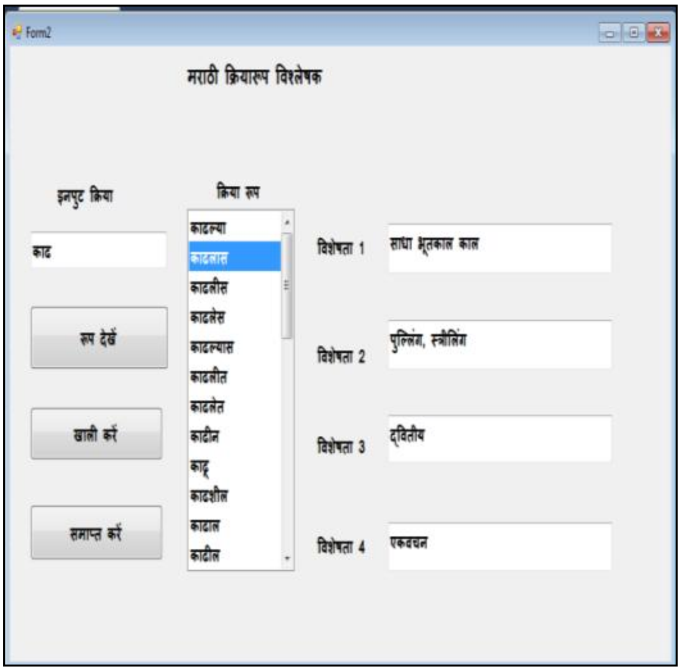

उपसंहार

निष्कर्षतः यह स्पष्ट होता है कि मानव भाषाओं की व्यवस्था को मशीन में स्थापित करना अत्यंत जटिल कार्य है, क्योंकि मशीन द्वारा (संगणक) जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है, उसे मशीनी भाषा कहते हैं। इस भाषा में सभी प्रकार की सूचनाओं को '0' और '1' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसको समझना साधारण मनुष्यों के लिए असाध्य है और मशीनों द्वारा मानव भाषाओँ को सीधे-सीधे समझ पाना संभव नहीं है। इस समस्या के कारण मानव मशीन के बीच आदेशों एवं कार्यों के आदान-प्रदान के लिए पिछले तीन-चार दशकों में कुछ विशेष प्रकार की भाषाओं का विकास किया गया है जिन्हें सामान्यतः 'उच्चस्तरीय भाषाएं' (High Level Languages) या 'प्रोग्रामिंग भाषाएं' (Programming Languages) कहा जाता है। ये भाषाएं प्रयोगकर्ता को कुछ विशिष्ट संरचनाओं के माध्यम से आदेश देने की सुविधा प्रदान करती हैं। इनके माध्यम से मानव भाषाओं के ज्ञान को समुचित मात्रा में एवं सुव्यवस्थित रूप से स्थापित करते हुए मशीनों या संगणकों को मानव भाषाओं को समझने में सक्षम बनाया जा सकता है।

संदर्भ सूची

मल्होत्रा, विजय कुमार (1998). कंप्यूटर के भाषिक अनुप्रयोग : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

फडके, अरुण (2010) मराठी लेखन-कोश : अंकुर प्रकाशन, ठाणे.

वाळंबे, कै. मो. रा. (2011) सुगम मराठी व्याकरण लेखन : नितिन प्रकाशन, पुणे.

सुरेखा, प्रकाश हुलसूरकर (2007) मराठी व्याकरण लेखन परिचय : (इंडिया) पब्लिशर्स, नवी दिल्ली.

बासुतकर, म.मा. (1986) हिंदी मराठी क्रिया पदबंध (व्यतिरेकी विश्लेषण) : केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा.

प्रसाद, धनजी (2012) सी.शार्प प्रोग्रामिंग एवं हिंदी के भाषिक टूल्स : प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली.

सिंह, सुरजभान (2000) हिंदी का वाक्यात्मक व्याकरण : साहित्य सहकार, दिल्ली .

CREATION

लेखनी

सृजन

A poem by Hrithik (Mumbai)

Eyes on the stars...
Feet on the ground...
I am..... Homebound...
If the clot recurs...a bigger price
I pay...
So I'm bound to the bed... 4 weeks they say...
(A test of my will in every way)
Duties, tasks, promises
unsettled and undone...
The confines of this bed even
denies me the Sun...
Betrayed trapped imprisoned
restrained...
(I smile) these little blows many a times I have sustained...
In doing so, a trick I learnt...
yes a trick I say...
Cause life's just a game
dammit, u gotta see it that way!
So a curse or a boon?
Opportunity or doom?
The trick of the game...is
invent the freakin Rule!!
Who decides? ..Who ordains?
We give up that Power..! is that Sane?
"Luck", "Fate", "Destiny", "Why me?"
With all of these I disagree.
Its a helpless state...
n that's not me.
Cause What I think... I will eventually Be.
I turn to my bed...now my magical cocoon...
Armed with a vision N my Attitude...
A miraculous tool!
So 'I' decide...and 'I' ordain...
This is my enchanted vehicle
for infinite growth n gain...!
Read, learn, love, laugh, discover
even invent!
The things I can do...
this is going to be a supreme event!
So when its time... I'll fly a higher kind...
With wider wings... n an enlightened mind...
Cause the promise I made yesterday...
Is a promise I cannot betray...
That a Champion I must be...
come.... what may..!
Now I look up and Rise...
With stars in my eyes...
My feet on the ground...
I am....... Homebound.
In the horizon
I see a glimmer...(Flashbulbs)
In the distance
I hear a sound...(Action)
I return a wink to my mother...
My sister's laughter resounds...
They are soldiers who've battled forever...
This is their turf...their ground.
A father stands triumphant...
His pride silent yet loud...
A wife walks along steadfast...
The meaning of her love avowed...
Eyes on the Stars.
Feet on the ground.
Firmly... ... on the ground...
I am ....Homebound.

तुलिका

सृजन

अमित मनोज

सहायक प्रोफ़ेसर , हिंदी एवं भारतीय भाषा विभाग

हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय

संपादक- 'रेत पथ' पत्रिका

chupchapdunia@gmail.com

Mob– 9992885959

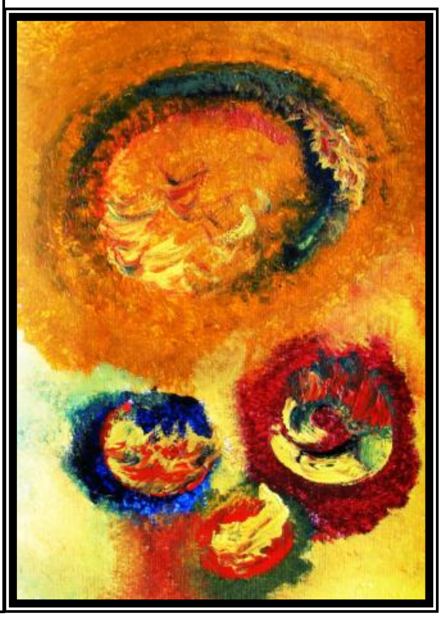

CREATION

कैमरा

सृजन

COMBINATIONS

PRAVEEN SINGH (Mumbai)

CINEMATOGRAPHER / EDITOR

praveenkrrish66@gmail.com

T 9763706428

“Mera Desh Mera Dharm” changed my life: Ratan Gahlot

बात-चीत

Ratan Gahlot,TV and Film Actor, Director, Producer and Writer and brother in law of veteran wrestler and actor Dara Singh who belongs to Punjab, started his career as a child artist from “Mera Desh Mera Dharm” .He is well known for films “Mamla Gadbar Hai, Jai Bajrangbali, Guru Suleman Chela Pahlwan” etc. and for TV shows like Yug and Junoon Here, is the excerpt from the conversation of Ratan Gahlot with our reporter

MD.Iqbal Ahmad
MUMBAI

How did you enter into the Film and TV Industry?

Since my childhood I wanted to be an army officer or a police officer. Once I came to Mumbai to visit the city and got a chance to see the shooting at the set of “Mera Desh Mera Dharm”, unfortunately a 16 yrs old artist did not come to the set so director told me to play his role and I had three important scenes in that film. I got appreciation for those scenes this way I entered into Industry.

How do you feel when people say that Ratan Gahlot is from Film and TV family background?

I feel great as my brother in law veteran actor Dara Singh acted in many blockbusters films and produced some of the good cinema of that era. My niece Vindo Dara Singh is also known face in Film and TV industry. But, if people think that I got work due to link up to my family with film and TV Industry then it is wrong perception. Whatever I am today, due to my hardwork.Eventough I worked as a sports coach for my earnings.

How is Punjabi Film Industry these days?

Punjabi films are doing very well globally these days in terms of business and contents.Gippy Gerewal,Gurudas Maan,Daljeet Singh,Neeru Bajwa,Chuvleen Chawla are very popular names in this manners. Many Bollywood personalities are working in Punjabi films like Dharmendra paji, Jimmy Shergil, Zareen Khan Etc .Last year released “Jatt James Bond” starring Gippy Gerewal and Zareen Khan has done wonderful business at the box office. New talents are coming up at a large platform.

Do you think that actors must have good look?

This is wrong perception; if you see then you will find that some actors are not fair but doing well in industry. Good Look requires only for certain characters not for every film and shows. And it is also wrong to say that one need to have certain looks. Your hardwork and patience are more important than anything else.

What is next after producing Jatt James Bond?

“Ishq My Religion” is ready for release starring Arjan Bajwa and Zareen Khan late this year. Apart from this I am also working on the scripts of Jatt James Bond part 2 which will be released in 2016 .Apart from that I am also reading some scripts for myself where I can act. I will let you know if something comes good to me. Thanks a lot

सुविख्यात भाषाविज्ञानी एवं अनुवादशास्त्री प्रो.कृष्ण कुमार गोस्वामी के साथ बातचीत

बात-चीत

सुविख्यात भाषाविज्ञानी, अनुवादशास्त्री एवं शैली विज्ञानी, भाषाविज्ञान, अनुवाद, प्रयोजनमूलक हिंदी, भाषा प्रौद्योगिकी, समाज भाषाविज्ञान आदि विषयों पर कई पुस्तकों का लेखन, और सहसंपादन; कई राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों और सम्मेलनों में अध्यक्ष, मुख्य अतिथि, और मुख्यवक्ता, लगभग 200 आलेखों का वाचन और प्रकाशन, अमेरिका, यू.ए.ई. , स्वीडन, डेनमार्क , मॉरीशस, दक्षिण अफ्रीका, नेपाल देशों में शैक्षिक यात्रा, केंद्रीय हिंदी संस्थान में प्रोफ़ेसर, विभागाध्यक्ष और क्षेत्रीय निदेशक, प्रगत अभिकलन विकास केंद्र(सी-डैक) में प्रोफ़ेसर एवं सलाहकार, कई विश्वविद्यालयों सरकारी और शैक्षिक संस्थानों की समितियों के सदस्य।

संप्रति: विश्व नागरी विज्ञान संस्थान, गुड़गाँव –दिल्ली के महासचिव और निदेशक।

मेघा आचार्य
वर्धा महाराष्ट्र

प्रश्न : सर, आपकी दृष्टि में अनुवाद क्या है और आज के परिप्रेक्ष्य में अनुवाद की भूमिका क्या है?

उत्तर: मैं अनुवाद को एक उपयोगी विधा के रूप में देखता हूँ। आज के भूमंडलीकरण के युग में अनुवाद बड़ा प्रासंगिक है। यह हमें विश्व के साथ जोड़ता है। विश्व साहित्य और विश्व में जो अनुसंधान हो रहे है उनके साथ जोड़ता है। अनुवाद के द्वारा किसी देश का साहित्य, शोध, लोग, जीवन शैली, वहां की परिस्थितियाँ इनका परिचय मिल जाता है। इस दृष्टि से अनुवाद की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है।

प्रश्न : अनुवाद का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। इसका एक पहलू यह भी है, कि अनुवाद आज भाषा तक सीमित नहीं रह गया। तो क्या इसके सिद्धांतों के परिष्करण की आवश्यकता है? आप इस बारे में क्या सोचते हैं?

उत्तर : सही कहा, अनुवाद का क्षेत्र व्यापक हो गया है। इस युग में विशेषत: अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद के व्यापकता में जो वृद्धि हुई है, इस दृष्टि से अब इसके सैद्धांतिक पक्ष पर भी चर्चा होनी चाहिए। अब तक इस संदर्भ में जो बात हुई है, वह फ़िल्म या टेलीविजन के संदर्भ में हुई है, लेकिन अब इसके हर पक्ष, हर पहलू पर विचार करने की ज़रूरत है।

बात असल में यह हैं कि आज से 40-50 वर्ष पहले अनुवाद को ही मान्यता नहीं दी जा रही थी। लेकिन अब समझ में आ रह है, कि अनुवाद के बिना काम नहीं हो सकता। लेकिन इस बात पर ही बहुत गंभीरता से विचार नहीं किया जा रहा। अभी भी हम अनुवाद का सही अर्थ नहीं समझ पाए हैं। अनुवाद का दर्शन नहीं समझ पाए हैं। लोग समझते है, कि एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करना बड़ा आसान है। उनको नहीं पता कि हर भाषा सक्रिय है, अपने आप में स्वनिष्ट है। भाषा मिट्टी की तरह नहीं है, उसमें जो गति है, सक्रियता है, वो दूसरी भाषा में भी है, सभी भाषाओं में हैं। अभी इस दृष्टि से ही गंभीर विवेचन नहीं हुआ है, तब अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद पर चिंतन की बात करना तो दूर है। और दूसरी जरूरी बात इस संदर्भ में अध्ययन और शोध के लिए विद्वानों को सुविधा प्राप्त नहीं हैं; इसके लिए आर्थिक मदत की आवश्यकता है। तभी इस दिशा में शोध कार्य किया जा सकता है।

प्रश्न: वर्तमान में व्यावहारिक तौर पर और शोध के क्षेत्र में अनुवाद और अनुवाद प्रौद्योगिकी की क्या स्थिति है? आपके अनुभव साझा करें।

उत्तर: अच्छी स्थिति नहीं है, एक तो यह है कि जो अनुवाद कार्य हो रहे हैं, हमारा तो कहना है, कि ऐसा लगता है कि उसमें अभी उथलापन ज़्यादा है। इसका कारण है कि हम ज्यादा व्यावसायिक हो गए है। इसे मिशन के रूप में नहीं ले रहे। मिशन के रूप में लेंगे तो काम बनेगा। हाँ,

व्यावसायिकता भी आवश्यक है! पर बिना मिशन उस शक्ति, उस भावना, उस उत्साह का उपयोग नहीं कर पा रहे, और यही कारण है कि स्तरीय अनुवाद नहीं हो पा रहे। हालांकि अनुवाद बहुत हुए... मैं समझता हूँ कि आज़ादी से पहले या आज़ादी के आसपास जो अनुवाद हुए वो बहुत अच्छे हैं। लेकिन अब जो अनुवाद हो रहे हैं, वो उतने अच्छे नहीं हैं और हो भी रहे तो बहुत कम हो रहे हैं। और दूसरा जो प्रश्न आपने किया शोध के संदर्भ में; बड़े ही सतही शोध कार्य हो रहे हैं। इन कार्यों से अभी कोई सिद्धांत तक उभरकर नहीं आया हैं, जो पुराने सिद्धांत हैं, उनको लेकर काम हो रहे हैं, ये तो जैसे मजबूरी हो गई है... आप देखेंगे कि बाहर देशों में कुछ-न-कुछ काम हो रहे हैं...

और अनुवाद प्रौद्योगिकी की बात करें तो इसे एक तरह से सीमित रूप में रख लिया गया है। अनुवाद प्रौद्योगिकी में कुछ नहीं किया जा रहा है। केवल लैब बना कर रख दिए गए है, बने-बनाए टूल्स और सोफ्टवेयरों का प्रयोग किया जा रहा है। पुराने विद्वान जो ढांचे बना कर गए हैं, उसी को काम में लिया जा रहा है। खास कर यह स्थिति भारत में हैं। विदेशों में फिर भी लोग थोड़ा-बहुत काम कर रहे हैं, जैसे- कोपेन हेगेन में आई ट्रेकिंग सिस्टम अड़ोप्ट किया गया है।

प्रश्न: सर, फ़िलहाल आप किसी प्रोजेक्ट पर काम कर रहें हैं? किसी पुस्तक पर काम हो रहा है? कृपया बताएं।

उत्तर : देखिये, मेरी भी कुछ सीमाएं है, उम्र भी ढलती जा रही है। 10-15 साल पहले अनुवाद के संदर्भ में पदबंध कोश तैयार करने की मेरी योजना थी, क्योंकि अनुवाद करते समय आने वाली समस्याओं में पंदबंधों के अनुवाद में कठिनाई भी है। तो... मैंने लगभग दस हजार पदबंध इकट्ठे किए और कोश में उनके हिंदी-अंग्रेजी अर्थ के साथ वाक्यों में प्रयोग भी दिए है। अब मेरी समस्या ये हैं, कि प्रकाशक बिज़नेस पॉइंट ऑफ व्यू से देखते हैं। मैंने अच्छे प्रकाशकों से बात की तो उन्होंने कहा, कि दस हजार प्रतियाँ बहुत ज्यादा है, किताब बिकेगी नहीं। आगे एक हिंदी के प्रकाशक ने इसे प्रकाशित किया। फिर मैंने अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश बनाया।

अब चूंकि शरीर भी साथ नहीं देता और समय की कमी के चलते योजनाएँ धीमी गति में है, फिर भी पिछले कुछ दिनों में मैंने बर्नाल्ड शॉ के एक नाटक का अनुवाद किया है। अभी वो प्रकाशन में गया है, मैं उसे फाइनल टच दे रहा हूँ। मैं चाहता हूँ... कि साहित्यिक अनुवाद, चूंकि कविता का अनुवाद बहुत कठिन है और मैं कवि भी नहीं हूँ, मैंने नाट्यानुवाद के बारे में सोचा है कि उसकी जो संवाद योजना होती है उसे कैसे प्रस्तुत किया जाए। इसका भी काम पूरा हो चुका है और हो सकता है कि इसी वर्ष प्रकाशित भी हो जाए।

इसके साथ-साथ एक योजना यह भी है कि जो अनुवाद के पक्ष है, जैसे- डबिंग, सबटाइटलिंग, अड़ोप्टेशन, यह सूचना प्रौद्योगिकी के सहयोग से कहां तक जा सकता है। अनुवाद की प्रासंगिकता क्या हो सकती है, उपादेयता क्या हो सकती है। अनुवाद के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी कितना लाभकारी या प्रभावकारी सिद्ध हो सकता है, इस पर विचार कर रहा हूँ और सोचता हूँ कि सामग्री जल्दी ही तैयार हो जाएगी। किसी सेमिनार में सूचना प्रौद्योगिकी और अनुवाद इस विषय पर मैं बात कर रहा था, तब मुझसे कुछ लोगों ने कहा कि इस विषय को भी आप अपने लेखनी में लाइए। अब देखिये क्या होता है...

प्रश्न : शोधार्थियों और और अनुवादकों को आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

उत्तर : अनुवादकों के लिए कहना चाहूँगा कि अनुवाद में माना जाता है, कि मूल पाठ के प्रति ज्यादा ईमानदारी बरतने से लक्ष्य भाषा में अनुवाद गड़बड़ हो सकता है। इसलिए मूल और लक्ष्य पाठ के बीच संतुलन बनाए रखना चाहिए। मूल का आशय भी आ जाए और लक्ष्य भाषा की प्रकृति का भी ध्यान रखा जाए। यह करने में अनुवादक अगर सफल होता है, तो निश्चित ही अच्छा अनुवाद सामने आएगा।

और शोधार्थी, शोध के निष्कर्ष स्पष्ट रूप से दें। तथ्यों को सामने लाये। इससे इस क्षेत्र में क्या-क्या लाभ हो सकते है, चुनौतियां क्या है, उसे उजागर करे। उनका शोध समाज और उस क्षेत्र के लिए लाभकारी सिद्ध हो।

शोधार्थी और अनुवादक, दोनों ही अपने कार्य के प्रति ईमानदार रहें, अपना काम पूरी निष्ठा से करें। कार्य के प्रति निष्ठा, ईमानदारी और परिश्रम ही सर्वोपरि है, यह हमेशा ध्यान रहे।

अनूदित

अवधी लोकगीत का भावानुवाद

राम-लखन चले बनवा, मइया से अरज करैं,

मइया! दै देहु अपनी असिसिया, त वन का सिधारौं।

अइसन जिभिया अंगार धरौं, जो वन भाखै हो,

अरे हमरी पपिनिया क राम, त वन का सिधारैं हो।

अरे-अरे अवध कै लरिकौ बटुरि सब आवौ हो,

लरिकौ! असि कै रचौ धमारि, राम बेलमावौ हो।

अरे - अरे अवध के वासी, त सब निर्मोही हो,

अरे! मोरी दुखियारी के राम, त केहू नाहीं रोकै हो।

अरे-अरे बेरी के पेड़वा, तूँ सोवत कि जागत हो,

बेरी! कौने बाटे गये राम-लछिमन, त सीता दुलारी मोरी।

अरे-अरे माता कौसल्या ! जात हम देखेन हो,

मोरे कंटवा म उलझी पगरिया, बिलमि के छोड़ाइन हो।

अरे-अरे ! बेरी क पेड़वा असीस मोरी लागै,

जरिया त जइहैं पतलवा उखाड़े नाहीं उजरै हो।

अरे-अरे घटवा क धोबिया, तूँ सोवत कि जागत हो,

धोबी! कौने बाटे गये राम-लछिमन, त सीता दुलारी मोरी।

अरे-अरे माता कौसल्या ! जात हम देखेन हो,

राम-लखन सिर पगिया, धोइ झुरवायों हो।

अरे-अरे ! घाट क धोबिया, असीस मोरी लागै,

धोबी! लदिया धोउब्या सौ-साठ, त सुधि नाहि बिसरै हो............।

अरे - अरे चकई चिरइया, तूँ सोवत कि जागत हो,

चकई! कौने बाटे गये राम-लछिमन, त सीता दुलारी मोरी।

अरे-अरे रानी कौसल्या ! जात नाहीं देखेन हो,

हम अपने चकवा के साथ, सोयन सुख नींनरि हो।

अरे - अरे चकई चिरइया, लेहु सरपवा हो

चकई! दिन भर रहिउ जँघिया जोरी, त रतिया बिछोहिल हो।

राम, सीता और लक्ष्मण वन चलने को प्रस्तुत हैं, माता से आज्ञा से माँगते हैं। माता का हृदय वेदना से फट रहा है। वे कहती हैं कि इस अयोध्या में क्या सभी निष्ठुर लोग ही बसते हैं? कोई भी मेरे राम को वन जाने से नहीं रोक रहा है। अरे नगर के बच्चो! तुम सब एकत्र होकर धमार रचो, जिसमें मेरे राम रम जायें और थोड़ी देर वन जाने से रुक जायें।

राम, सीता और लक्ष्मण चले जाते हैं, माता कौसल्या पीछे दौड़ी जाती हैं। पर किस मार्ग से वे निकल गये, वे ढूंढ नहीं पातीं। वे सभी से पूछती हैं:

'अरे बेरी के पेड़! तुम सो रहे हो कि जाग रहे हो? तुमने मेरे बच्चों को देखा? किस मार्ग से वे गये?' बेरी उत्तर देती है-'हाँ, माँ! मेरे काँटों में उनकी पाग उलझ गयी थी, उसे सुलझाने के लिए वे थोड़ी देर के लिए रुके थे।' माता कौसल्या उसे आशीर्वाद देती हैं-अरे बेरी! तुमने किसी बहाने से मेरे बच्चों को थोड़ी देर के लिए विश्राम दिया, रोका, जाओ मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हारी जड़ें पाताल तक जायेंगी। तुम्हें समूल कोई नष्ट नहीं कर पायेगा।'

माता और आगे बढ़ती हैं घाट पर धोबी है, उससे भी पूछती हैं- 'घाट के धोबी! तुमने मेरे बच्चों को देखा? वे किस राह से गये? वह उत्तर देता है- 'हाँ माता! मैने राम-लक्ष्मण के सिर की पाग धोकर सुखायी, वे इसी राह से गये।' माता कहती हैं- 'तुमने मेरे बच्चों को विश्राम दिया, सुख दिया, मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि तुम सौ साठ लादी (गंदे कपड़ों के ढेर की गठरी) धोओगे पर तुम्हें विस्मरण नहीं होगा कि किस ग्राहक का कौन सा कपड़ा है।'

वह और आगे चलती हैं तो चकवा-चकवी युगल बैठे मिलते हैं। माता कौसल्या उनसे भी अपना प्रश्न करती हैं। चकवी कहती है- 'नहीं, मैं तो अपने चकवे के साथ शयन कर रही थी, मैंने नहीं देखा कि तुम्हारे राम, लक्ष्मण और सीता किधर से गये?' माता कौसल्या दुःखी होकर कहती हैं- 'चकवी! तुमने मेरे राम को नहीं देखा? जाओ तुम दिन भर तो अपने चकवे के साथ रहोगी पर रात में तुम उससे बिछुड़ जाया करोगी।'

सहज करुणा से भरा माता का हृदय महारानी के सारे आवरण हटाकर वन पथ में अपने बच्चों के पीछे भागता है। बेर जो काँटेदार है, कुपथ्य है, वह भी राम के प्रति करुण है, संवेदनशील है। जो राम का हो जाये, उसका कोई नाश नहीं कर सकता। धोबी जाति को अपने ग्राहकों के वस्त्र की पहचान नहीं भूलती, इस लोक विश्वास को रामकथा से जोड़कर महत्त्व दिया गया है। चकवा-चकवी के विछोह के प्रसिद्ध 'कवि-समय' को कथा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। मातृ हृदय की सहज झाँकी है। अपने बच्चे को चाहने वाले को आशीष और उपेक्षा करने वाले पर आक्रोश है।

बहुभाषिक भारत बनाम 'डिजिटल इंडिया'

LANGUAGE

भाषा

मशीन घूस नहीं ले सकती और उसके भाई-भतीजा नहीं होते, इसलिए डिजिटल समाज में मशीन की भागीदारी से प्रशासन में पारदर्शिता बढ़ेगी तथा भ्रष्टाचार में कमी आएगी, इसी विचार से प्रभावित मौजूदा सरकार डिजिटलीकरण के प्रति गंभीर दिख रही है।

अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी
Centre for Endangered Languages, Visva-Bharati Santiniketan, Bolpur.
E-Mail ID: arimardankt@gmail.com
Mobile : +91 8005459243

आज बाजार ने हमारी चेतना में इस बोध को लगभग स्थापित कर दिया है कि किसी उत्पाद की विकास-प्रक्रिया से अधिक महत्त्वपूर्ण उसकी उपयोगिता होती है, इस तर्क पर देखा जाए, तो इंटरनेट भारतीय समाज में भी अनेक सकारात्मक परिवर्तनों के साथ प्रस्तुत हुआ है, जिनमें से कई का प्रभाव तो सीधे आम जनता पर भी पड़ा है, मात्र एक उदाहरण से भी समझें, तो इसके महत्त्व को स्वीकार करने में किसी को संदेह नहीं होगा, मसलन् रेलवे के टिकट बुकिंग की जो पुरानी व्यवस्था थी, उसमें बुकिंग से जुड़े रेल-कर्मियों की विशिष्ट सत्ता बनती थी, जिससे तत्समय सभी उपभोक्ता त्रस्त रहते थे, अग्रिम टिकट के लिए कई-कई दिनों तक बुकिंग कार्यालय का चक्कर लगाने के साथ अनेक नैतिक-अनैतिक एवं थकाऊँ चरणों से गुजरना पड़ता था। वहीं आज इंटरनेट के कारण यात्रा के दोनों तरफ का टिकट सहज रूप से मिल जाता है, इसके साथ मात्र रेलवे में ही इंटरनेट की अनेक सुविधाएँ जैसे घर से टिकट खरीदना, उपलब्ध टिकटों की स्थिति पता करना, यात्रा के समय ट्रेन के विलंब होने की वास्तविक स्थिति का आंकलन कर पाना संभव हुआ है, जाहिर है इससे रेल-यात्रियों को सुविधाजनक एवं पारदर्शितायुक्त व्यवस्था मिली है, जिसमें समय, श्रम और तुलनात्मक रूप से लागत में भी कमी आई है, इसी क्रम में आज ऑनलाइन खरीददारी करना मध्यमवर्गीय समाज का तेजी से उभरता शौक है, अब इस प्रवृत्ति में सिर्फ विस्तार की ही संभावना है, इसीलिए आज ई-कामर्स व्यवसाय का एक नया रूप है, इसके साथ ही प्रशासन, बैंकिंग, शिक्षा, पर्यटन, मनोरंजन एवं जनसंपर्क आदि में इंटरनेट की भूमिका आज अभूतपूर्व रूप से बढ़ी है, यह उम्मीद की जाती है कि चूँकि मशीन घूस नहीं ले सकती और उसके भाई-भतीजा नहीं होते, इसलिए डिजिटल समाज में मशीन की भागीदारी से प्रशासन में पारदर्शिता बढ़ेगी तथा भ्रष्टाचार में कमी आएगी, इसी विचार से प्रभावित मौजूदा सरकार डिजिटलीकरण के प्रति गंभीर दिख रही है। इंटरनेट ने जिस तेजी से भारत में अपना पैर फैलाया था वह अभूतपूर्व रहा है, इसलिए इतिहास की बुनियाद पर इंटरनेट के विस्तार की संभावना से किसी को संदेह नहीं होना चाहिए। ध्यान रहे कि देश में 10 लाख की आबादी तक पहुँच बनाने में रेडियो को 43, टीवी को 28, कंप्यूटर को 11 साल लगे, जबकि इंटरनेट को यह दूरी तय करने में मात्र 17 महीने लगे थे। यथा-

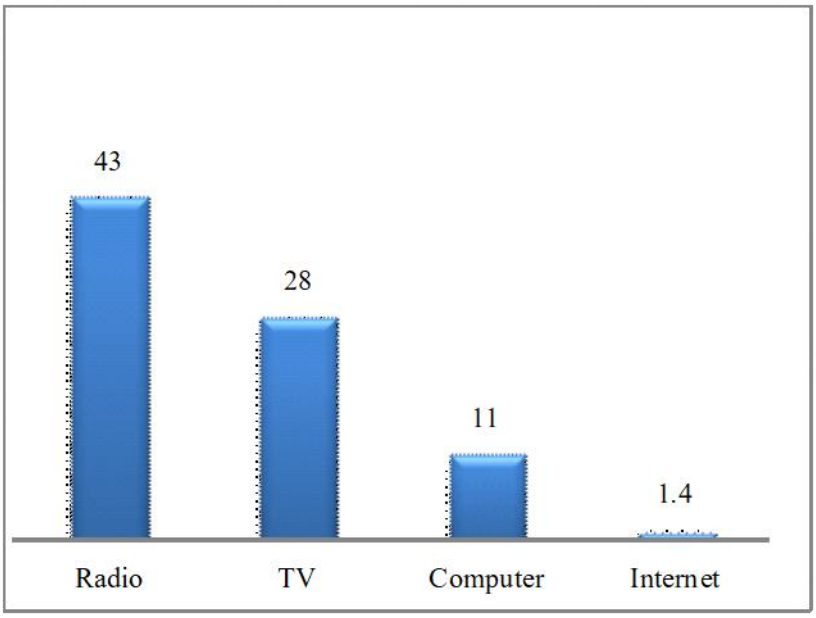

आज जिस तरह से इंटरनेट से अपेक्षाएँ बढ़ी हैं, उसी को ध्यान में रखकर सरकार 2017 तक देश के ढाई लाख गाँवों में ब्राडबैंड पहुँचाने के लक्ष्य को लेकर काम कर रही है, वैसे भी आज देश में (30 जून, 2015 तक) इंटरनेट प्रयोक्ताओं की संख्या 35.2 करोड़ के स्तर पर पहुँच गई है। अब स्वयं इंटरनेट की नियामक संस्था की तरह व्यवहृत गूगल ने भविष्यवाणी की है कि 2017 तक भारत में इंटरनेट प्रयोग करने वालों की संख्या अमेरिका से अधिक होगी। गौरतलब है कि इंटरनेट की पहुँच बनाने में अब मोबाइल भी प्रभावी भूमिका निभा रही है, क्योंकि यह सिर्फ अपनों से बात करने और संदेश भेजने का माध्यम मात्र नहीं रही, बल्कि सामान्य जीवन की अपरिहार्य आवश्यकयता बन चुकी है। नीचे दिए ग्राफ में देखा जा सकता है कि देश में इंटरनेट प्रयोक्ताओं सर्वाधिक संख्या का माध्यम आज मोबाइल है।

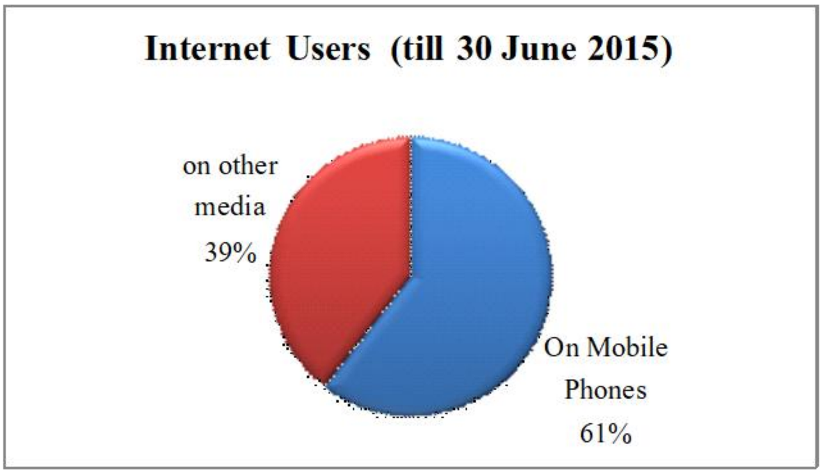

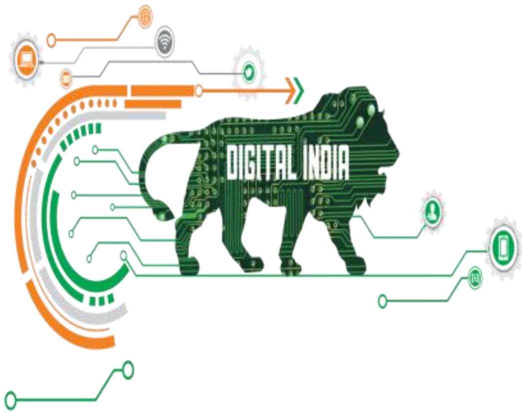

संभवत: यही कारण है कि आज भारतीय समाज में इंटरनेट के प्रयोग करने वालों की संख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है, क्योंकि कंप्यूटर, लैपटॉप आदि को माध्यम के रूप में प्रयोग तक इंटरनेट के प्रयोग की अनेक औपचारिकताएँ होती थीं, लेकिन मोबाइल के प्लेटफॉर्म पर उपलब्धता की स्थिति ने इसे लोगों की हथेली पर उपलब्ध करा दिया है। इंटरनेट के प्रयोग के विस्तार को निम्नलिखित ग्राफ के माध्यम से समझा जा सकता है-

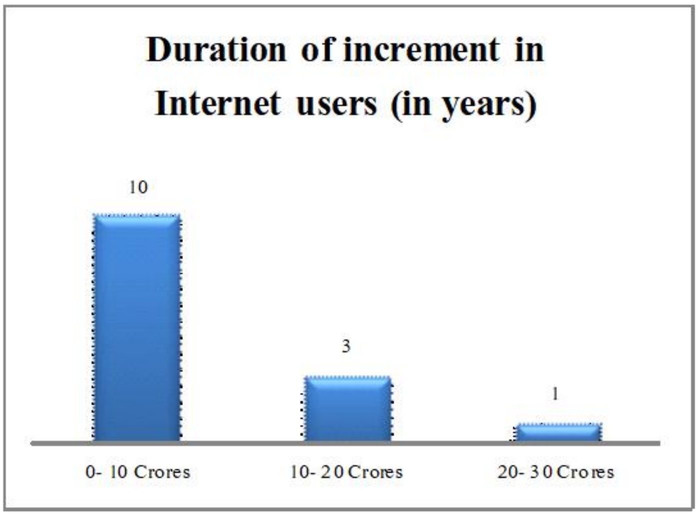

बाजार की एक शोध संस्था 'आइडीसी' के अनुसार देश में 2013 तक मोबाइल ग्राहकों की संख्या 90 करोड़ थी, जिसमें से 30 प्रतिशत स्मार्ट फोन हैं और आज मोबाइल के साधारण हैंडसेट से स्मार्ट फोन में परिवर्तन का दर 186 प्रतिशत है। स्पष्ट है कि जैसे-जैसे स्मार्ट फोन का प्रभाव बढ़ेगा, वैसे-

वैसे सूचना-क्रांति के विस्तार की पृष्ठभूमि मजबूत होती जाएगी, ध्यातव्य है सूचना-क्रांति की मातृभाषा अँग्रेजी है और अपने पूरे कलेवर में यह भारतीय पारस्थितिकी के बरक्स खड़ी दिखती है, इससे न सिर्फ भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता के सीमित होने का खतरा बढ़ रहा है, बल्कि लोकतांत्रिक प्रतिरोध की धार भी कुंद हो रही है, क्योंकि भारत एक बहुभाषी देश है और आम भारतीय संवेदना की अभिव्यक्ति अँग्रेजी में संभव नहीं है, ऐसे में जब डिजिटल-क्रांति के दायरे में आमजन आएंगें, तो एक फिर संवाद की भाषा एवं प्रक्रिया पर नए तरीके के सवाल खड़े होंगें, वैसे भी यह कैसे संभव है कि जहाँ पाँच भाषा-परिवार के अंतर्गत 122 भाषाएँ एवं लगभग 1652 मातृभाषाएँ हैं, 22 भाषाएँ संविधान की आठवीं अनुसूची में

शामिल हैं और इसमें विस्तार की माँग भी लगातार बनी हुई है, 87 भाषाएँ देश में मुद्रण एवं प्रसार माध्यम के रूप में प्रयुक्त होती हैं, 71 भाषाओं में आकाशवाणी का प्रसारण होता है, संघीय स्तर पर दो राजभाषाओं के साथ विभिन्न स्थानीयता के अनुरूप 32 भाषाएँ राजभाषा के रूप में कार्यरत हैं, 47 भाषाएँ विद्यालयों के शिक्षण के माध्यम के रूप में प्रयुक्त होती हैं, यहाँ तक कि देश की मुद्रा द्विभाषिक है और 15 भाषाओं द्वारा इसका मुद्रा-मान संप्रेषित कराया जाता है, वहीं डिजिटलीकरण की प्रक्रिया अपने निहित उद्देश्यों को सिर्फ अँग्रेजी में पा सकेगी, यह सूचना-तकनीक के उत्पादों की स्वाभाविकता ही है कि इंटरनेट के माध्यम से बन रहे इस नए प्रशासनिक-तंत्र में नौकरशाही की अँग्रेजीपरस्ती को नए सिरे से वैधता मिलती है, इसके अलावा भी इंटरनेट ने जिस वैश्विक भूगोल को अपने प्रभाव-क्षेत्र में समेटा है, उसे पूरे भूगोल में 6000 से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं, हालाँकि इस पूरी आबादी का 90 प्रतिशत लोग सिर्फ 300 भाषाओं में व्यवहार करते हैं, लेकिन सूचना-प्रौद्योगिकी का पूरा प्रसार विश्व के लगभग 100 भाषाओं के भीतर ही सीमित है, जबकि एकमेव वर्चस्व अँग्रेजी का ही है, इस प्रकार सूचना-प्रौद्योगिकी को सूचना की भाषाई विविधता स्वीकार्य नहीं है, जो न सिर्फ संप्रेषणीयता का ह्रास है, बल्कि अँग्रेजी से वंचित विश्व की एक बड़ी आबादी के लिए आज भी यह द्वितीयक है, अब 'डिजिटल इंडिया' की संकल्पना में जिस पारदर्शिता एवं भ्रष्टाचार के कमी की बात की जाती है, कहीं वह अँग्रेजी के ज्ञान के अभाव में स्वयं एक शोषण का माध्यम न बन जाए, दूसरी बड़ी चिंता तकनीक की तटस्थ न होने को लेकर है, यही कारण है कि इंटरनेट का स्वाभाविक माध्यम अँग्रेजी है और इंटरनेट और अँग्रेजी दोनों अपने साथ एक पहचान एवं परिवेश लेकर आते हैं, ऐसे में सूचना-क्रांति से भी तटस्थता की अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए, वैसे भी जब इसके निर्धारक समूह विश्व के सर्वाधिक धनी होने की प्रतिस्पर्धा में सतत शामिल हों, तो निष्पक्षता असंभव है। सूचना-तकनीक के इंटरनेट के माध्यम से उपस्थिति ने जिस परिदृश्य का निर्माण किया है, वह केंद्रित संसाधन के विकेंद्रित प्रयोग पर आधारित है, इसमें सूचना-संसाधन का केंद्र अमेरिका है, जहाँ गूगल, फेसबुक, ट्वीटर और ह्वाट्स-अप आदि इंटरनेट के वर्चस्व वाली अधिकांश कंपनियों

के सर्वर हैं, इसके प्रभावस्वरूप जिस समाज का निर्माण हो रहा है, वहाँ 'माइक्रोसॉफ्ट' अपने ऑपरेटिंग सिस्टम और 'गूगल' इंटरनेट पर वर्चस्व के कारण डिजिटल समाज के सामंत हैं, यदि 'क्लाउड कम्प्यूटिंग' कल की सच्चाई है, तो नि:संदेह इसका पूरा बादल अमेरिका का होगा और जमीन के पास अप्रत्यक्ष रूप से उसके हितों को पोषित करने के अतिरिक्त कोई काम नहीं बचेगा, यदि सामरिक लिहाज से भी देखें तो उत्तर-आधुनिक चिंतक 'ल्योतार्द' कंप्यूटर की जिस संग्रह-क्षमता को ज्ञान का केंद्र कहते हैं, वह आज निजी कंपनियों के स्वामित्व में अमेरिका में संरक्षित है और यही अमेरिका अपने हिसाब से विश्व भर के व्यक्तियों की जासूसी भी करता है और उसके इस खेल में गूगल से भी सूचनाएँ लेने की शिकायतें आ चुकीं हैं, यह स्पष्ट भी हो चुका है कि भारत भी अमेरिका के इस दायरे और मंशा से बाहर नहीं है। यह पूरा प्रसंग निजता के हनन का वैसा मामला नहीं है, जो

व्यक्ति और व्यक्ति के मध्य होता है, बल्कि इसमें राष्ट्र और इसकी सामरिक एवं रणनीतिक पहचान भी शामिल है। सूचना-क्रांति जिस तरह अँग्रेजी के कंधे पर चलकर वैश्विक एकरूपता की साधन बनी है, उससे हम सभी प्रभावित होने से स्वयं को रोक नहीं पाए हैं। यह अनायास नहीं कि आज अँग्रेजी के मानकीकरण का काम सूचना-क्रांति कर रही है और चूँकि यह क्रांति अमेरिका द्वारा पोषित है, इसलिए अँग्रेजी का वह रूप जो कभी ब्रिटेन के लिए निष्ठा एवं प्रतिष्ठा का विषय था, उसे आज बिना किसी युद्ध और उन्माद के सहज ढंग से अमेरिका अपने अनुसार विश्व के अधिकांश देशों पर थोप रहा है, ध्यान रहे कि तकनीक और भाषा के आंतरिक संपर्क में भाषा को तकनीक के अनुरूप ही खुद को ढालना पड़ता है, स्मरण रहे कि जब साधारण टाइप-राइटर का विकास हुआ था, तो वह देवनागरी के उस रूप को बदलने का कारक बना, जो टंकण से पहले हस्त-लिखित रूप में थी, इनमें से अनेक ऐसे परिवर्तन हैं, जो औच्चारिक रूप के-प्रतिनिधित्व के देवनागरी के दावे एवं स्वरूप से अलग हैं। यही नहीं जो लिपियाँ कुंजी-पटल के अनुरूप खुद नहीं ढाल पाईं, वे प्रिंट-उद्योग से बाहर ही हो गईं, इस प्रकार जब कोई उत्पाद समाज में आता है, तो अपनी कुछ शर्तें अपने साथ लेकर आता है, सूचना-क्रांति के संदर्भ में भाषाई शर्त भी शामिल है, इसका लाभ उसके उत्पादक देश और समाज को मिलता है यही कारण है कि कंप्यूटर का 'माउस' हर प्रसंग में माऊस ही रहता है, 'चूहिया' नहीं हो पाता है। यही नहीं आगे वह किसी विजेता की तरह अपने परिवेश का विस्तार करता है, अन्यथा ऐसा कौन-सा कारण है कि स्वच्छ होने की चाह रखने वाला 'भारत' अपने 'डिजिटल' होने की योजना मात्र में भी 'इंडिया' हो जाता है। यदि भारत के प्रसंग को देखें, तो यह महज योजनाओं का नामकरण नहीं है, बल्कि समाज के दो रूपों के व्याप्ति की स्वीकारोक्ति है, भारत स्वच्छ हो सकता है, डिजिटल नहीं, डिजिटल होने के लिए उसको 'इंडिया' बनना ही पड़ेगा, इधर 10-15 वर्षों से भारतीय भाषाओं विशेषकर हिंदी ने इंटरनेट पर अपनी प्राथमिक उपस्थिति दर्ज भी कराई है, लेकिन इसका माध्यम भी ब्लॉगिंग एवं माइक्रो-ब्लॉगिंग से जुड़ी वेबसाइटें ही हैं, जिन पर एकाधिकार भी अमरीकी कंपनियों का ही है, हालाँकि इन्हीं कंपनियों ने हिंदी के लिए कुछ टाइपिंग टूल, फॉन्ट एवं ऑनलाइन कोश आदि के विकास और प्रसार में योगदान भी दिया है, लेकिन यह सब बाजार के वे टूल होते हैं, जिनसे उसकी पहुँच और सामर्थ्य का विस्तार हो सके, इनमें से अधिकांश भाषाई सॉफ्टवेयर कई स्तरों पर भारतीय भाषाई संसाधन के ही निःशुल्क एवं स्वतंत्र दोहन स्वरूप सामने आए हैं। इस प्रकार यह सब व्यापक भारतीय उपभोक्ताओं को अपने साथ जोड़ने की पहल मात्र है, गूगल द्वारा 'हिंदीवेब' को लेकर किया गया हालिया प्रयास भी इसी बोध पर की गई पहल है, आज भारत की आबादी का बहुसंख्य हिस्सा युवा है, जो इस क्रांति के प्रयोग के भी केंद्र में है। इन्हीं की आँखों से गूगल, माइक्रोसॉफ्ट और फेसबुक जैसी अमरीकी कंपनियाँ अपने भविष्य के सपने बुन सकतीं हैं, तो यह काम भारत और भारतीय भाषाएँ क्यों नहीं कर सकतीं, यह क्या चिंताजनक नहीं है कि डिजिटल भारत की भाषा क्या होगी, इस प्रश्न पर विचार भी नहीं किया जा रहा है और इसे सिर्फ बाजार के भरोसे छोड़ दिया गया है, देश आज जहाँ खड़ा है, वहाँ निःसंदेह 'डिजिटल इंडिया' कार्यक्रम सही से लागू किया गया तो अनेक अवसरों के दरवाजे खोल सकता है, विगत 15-20 वर्षों के अनुभव से यह संभावना बढ़ भी जाती है कि अनेक विपरीत परिस्थितियों के बावजूद देश के एक बड़े तबके ने सूचना-क्रांति का स्वागत किया है, विशेषकर टेलीफोन एवं मोबाइल संपर्क के क्षेत्र में। आज मोबाइल आम जन के उपयोग की वस्तु हो गई है, ऐसे देश में जहाँ अब भी भूख से मौतें होतीं हैं, वहाँ सरकारी आँकड़ों के अनुसार देश की आबादी के तीन-चौथाई से अधिक लोगों के पास मोबाइल है। ऐसे में ऊपरी तौर पर किसी के पास मोबाइल का होना, उसके अमीर होने का सूचक नहीं है, हालाँकि इसमें अब जो वर्ग-विभेद हो रहा है, वह सस्ते या महँगे हैंडसेट के होने से तय होने लगा है, गौरतलब है कि 'स्मार्ट फोन' देश में मोबाइल के प्रयोग करने वालों मे से 30 प्रतिशत लोगों के पास ही है, बहरहाल इस पृष्ठभूमि पर यह उम्मीद की जानी चाहिए कि 'डिजिटल इंडिया' कार्यक्रम

सफल हो और सूचना-नेटवर्क की स्थापना, रोजगार सृजन, भ्रष्टाचार पर अंकुश, समय की बचत एवं निरपेक्ष प्रशासन जैसे उद्देश्यों को यह तार्किक परिणति तक पहुंचाए, लेकिन यहाँ सवाल सरकार के रवैये को लेकर है, जो इस कार्यक्रम को आक्रामक ढंग से पेश कर रही है और देश की हर समस्या के समाधान के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास कर रही है, यहाँ तक दावा किया जा रहा है कि इससे अमीरी एवं गरीबी के बीच की खाई मिटेगी, जो ठीक नहीं है क्योंकि इस पूरी कवायद को सुविधा संपन्न लोगों की सुविधाओं में विस्तार के रूप में ही देखा जाना चाहिए और यदि इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन में स्थानीय आवश्यकताओं को नकारा गया, तो सरकारी दावों के विपरीत सुविधाहीन लोगों के शोषण का एक नया माध्यम बनेगा, यदि जापान के किसी होटल में इलेक्ट्रॉनिक बटन दबाने से मशीन इच्छित खाना टेबल तक पहुँचा देने की प्रक्रिया को देखकर भारत में इसे यथावत् नहीं लागू किया जा सकता, क्योंकि देश में एक ही होटल में सैकड़ों तरह के व्यंजन परोसने पड़ते हैं, जबकि जापान में कुछ सीमित खाद्य ही हैं? तात्पर्य यह है कि 'डिजिटल इंडिया' के लागू करने से पहले की मुकम्मल तैयारी करनी चाहिए। इसमें भारतीय विविधता के संरक्षण का प्रश्न भी प्रमुख है, विगत पंद्रह-बीस वर्षों में देश की राजनीतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि ने एक ऐसे मध्यम-वर्ग को तैयार किया है, जिसको आज सब कुछ 'स्मार्ट' चाहिए, भारत में यही वर्ग मैनुअल कासल्स का 'नेटवर्क सोसायटी' है, इसी वर्ग को आकर्षित करने के दबाव में सरकारों ने बिजली, सड़क, शिक्षा स्वास्थ्य जैसी समाज की आधारभूत आवश्यकताओं को छोड़कर मुफ्त में लैपटॉप, टेबलेट और वाई -फाई की सुविधा बाँटने लगीं हैं, जबकि हकीकत यह है कि वर्तमान उत्तर प्रदेश की अखिलेश यादव वाली सरकार द्वारा वितरित मुफ्त का लैपटॉप प्राय: लोगों द्वारा पाने के तुरंत बाद या तो औने-पौने दामों में बेंच दिए गए या आज बिना बिजली और बिना उपयोग के खराब हो चुके हैं और सरकार को उस योजना से हाथ खीचना पड़ा, गौरतलब यह है कि प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों से लखनऊ में संपन्न लैपटॉप वितरण के एक कार्यक्रम में पहुँचे कुछ छात्रों के पास लौटने का किराया नहीं था, इसलिए लैपटॉप बेचना मजबूरी थी, ताकि लौटने के लिए ट्रेन या बस के किराया की व्यवस्था हो सके। यद्यपि उत्तर प्रदेश और दिल्ली का सामाजिक यथार्थ भिन्न है फिर भी यहाँ मुफ्त वाई-फाई दिए जाने की बहु-प्रचारित घोषणा भी रोटी के स्थान पर 'ब्रेड-बटर' वाली ही योजना है, बहरहाल लोकतंत्र की अपनी कुछ मजबूरियाँ होती हैं और बहुसंख्यक होने के कारण यह तबका वह-सब-कुछ पाने का हकदार भी है, लेकिन समस्या यह है कि इसके शोर में उस वर्ग की आवाज लगातार दबती जा रही है, जिसको सूचना-प्रौद्योगिकी के मिलने वालों लाभों से इतर दो समय की रोटी जुटाना कठिन होता है, उस पर मोदी सरकार यह दावा करे कि इससे अमीर-गरीब के मध्य की खाई मिटेगी, तो हास्यास्पद लगता है, बल्कि हकीकत यह है कि भारतीय संदर्भों में यह खाई और बढ़ेगी, 'डिजिटल डिवाइड' की इस खाई में समानांतर रूप से अमीरी और गरीबी भी शामिल है। यह सही है कि वैश्विक प्रतिस्पर्धी युग में समय से सामंजस्य बैठाने की चुनौती भारत में भी है, लेकिन भारतीय समाज में 'स्मार्ट' का जश्न मनाने के अतिरिक्त एक लंबा तबका है, जिसे यही 'स्मार्ट' वाला भाव आतंकित करता है और किसी भी रूप में हिंसक भाव के साथ ही सामने आता है। इसके बाद जो परिदृश्य बन रहा है, उसमें ऐसे वर्ग को लगातार सीमित होना पड़ रहा है। एक समय के बाद वे लोग इस 'स्मार्ट इंडिया' की नागरिकता की शर्तें खो देंगें और मजबूर भारत के किसी सड़क के किनारे भी सुरक्षित नहीं रह पाएंगे, डिजिटलीकरण की प्रक्रिया की सामरिक चुनौती इसका अमेरिका केंद्रित होना है, जबकि व्यावहारिक चुनौती इसका अँग्रेजी में होना है, इसी के बल पर अमेरिकी लेखक थामस एल॰ फ्रीडमैन ने बीसवीं सदी के आरंभ में ही दुनिया को 'फ्लैट' अर्थात् सपाट घोषित कर दिया था। इस समतलीकरण की प्रक्रिया में न जाने कितने समाज, संस्कृति एवं भाषाएँ वैश्विक एकरूपता के लिए खाद का काम कर चुकें हैं, इस पर विचार करने से भी अब लोग कतराने लगे हैं, सामान्यत: कहा गया है कि तकनीक मानव के ज्ञानेन्द्रिय क्षमता का विस्तार करती है, लेकिन यह भी सच है कि तकनीक का अपना नियत परिवेश होता है और इससे तटस्थता की अधिक उम्मीद नहीं की जा सकती है और इसकी देश, समाज और भाषाई संलिप्तता का सबसे व्यावहारिक उदाहरण सूचना-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में देखा जा सकता है। इसी के प्रत्युत्पाद के फलस्वरूप भारत में दो वर्गों में विभक्त समाज के बीच की खाई बढ़ी है, इसमें कुछ लोगों ने मूल धारा में बने रहने की कोशिश भी उनके प्रतिरोध की धार कुंद होने की अपरोक्ष शर्त पर ही की है, आज रैम, ट्वीट, फेसबुक, यूट्यूब, ह्वाट्स-अप, एप्प, जीबी, ई-मेल, लाइक, कमेंट, फारवर्ड, ओपेन, लॉग-इन, वीडियो, बैक-अप, चार्ज, रिचार्ज, डिस्चार्ज, सेल्फी, टैग, हैस-टैग और ट्रेंड जैसे सैकड़ों शब्द देश के किसी भी भाषा में यथावत् पहुँचे हैं, जबकि भारतीय भाषाओं से सैकड़ों शब्द लगातार प्रयोग से बाहर हो रहे हैं, अखईंन, परुआ, मूसर, पाँचा, बरही, हेंगा एवं मचान जैसे हजारों शब्द या तो अपना अस्तित्व खो चुके हैं और शीघ्र खो देंगे, वैसे यह भी सत्य है कि समाज में विकास के साथ कुछ शब्द अपना अस्तित्व खोते हैं और कुछ नए जुड़ते हैं और यह प्रक्रिया भाषा के विकास के लिए आवश्यक भी होती है, लेकिन हिंदी में वर्तमान बदलाव थोपने जैसा लगता है, जो समाजों के अंतर को भी स्पष्टत: रेखांकित करता है, अभी वर्तमान में जो स्थिति है उसमें 'डिजिटल इंडिया' में शामिल होने की अपरोक्ष शर्त है कि लोक-भाषा एवं संस्कृति का परित्याग किया जाए। यह कहीं से न्याय-संगत नहीं दिखता कि जिस व्यापक भारतीय उपभोक्ताओं के भरोसे से अमेरिकी संचार कंपनियाँ लगातार फल-फूल रही हैं, उन्हीं उपभोक्ताओं को किसी प्रकार की शर्त को

अंगीकार करना पड़े, इस संबंध में प्रधानमंत्री मोदी की यह अपील सराहनीय है कि भारत में उद्यमियों को गूगल के विकल्प के बारे में सोचना चाहिए। लेकिन यह भी देखना होगा कि गूगल एक शक्तिशाली सामंत की तरह है, उसके समक्ष इस तरह कोई नया उत्पाद जब भी तैयार होने का प्रयास करता है, वह कुचले जाने को मजबूर होता है, कभी भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली के कुछ शोधार्थियों ने बंगलुरु में गुरुजी डॉट इन नामक सर्च इंजन का विकास किया था और बड़े उत्साह के साथ खड़ा होने का प्रयास किया था, जो कई मायनों में गूगल से बेहतर भी था, लेकिन आज कोई उसका नामलेवा नहीं है। इस बाजारू प्रतिस्पर्धा में किसी स्थापित गूगल के बरक्स नया उत्पाद खड़ा करना एक बड़ी चुनौती है और वर्तमान परिदृश्य में कोई निजी कंपनी उसमें निवेश का साहस शायद ही करे। ऐसे में यदि मोदी जी सही मायनों में गूगल का भारतीय विकल्प चाहते हैं और जो होना भी चाहिए तो ऐसे प्रयास को सरकारी संरक्षण की आवश्यकता होगी, चीन ने यह सब कुछ करके दिखाया भी है, भारत में भी यह संभव है बशर्ते सच्ची निष्ठा होनी चाहिए, बहरहाल डिजिटलीकरण की प्रक्रिया में देश की स्थानीयता को बढ़ावा देना मात्र एक विकल्प है, इसमें प्रयास यह होना चाहिए कि यह सब कुछ भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हो, जिससे देश के बहुसंख्यक लोग अपनी भाषाओं के साथ इस प्रक्रिया से जुड़ सकते हैं, यह भी देखना होगा कि इसे लोगों पर थोपा नहीं जाए, बल्कि स्वाभाविक रूप से इससे लोग जुड़ें तो ही बेहतर है। इसके विपरीत वर्तमान स्थिति यह है कि 'डिजिटल इंडिया' को हर मर्ज की दवा बताने का प्रयास किया जा रहा है और आक्रामक ढंग से इसे पेश किया जा रहा है, स्मरण रहे कि कृत्रिम मेधा में हो रहे शोधों की संभावित सफलता के बावजूद तकनीक मानव का विकल्प नहीं हो सकती है, आज सीसीटीवी कैमरा चोर की पहचान करवा सकता है, इससे जुड़े सेंसर चोर को घर में घुसने से रोक सकते हैं, लेकिन किसी व्यक्ति को चोर बनने से कोई तकनीक नहीं रोक सकती, यह काम सिर्फ कोई व्यक्ति ही कर सकता है, इस लिए तकनीक को मात्र एक माध्यम के रूप में देखना चाहिए, उस अति निर्भरता के भी अपने खतरे हो सकते हैं। इसके साथ यह भी देखना होगा कि आज इंटरनेट और डिजिटलीकरण का विरोध करना समय से पीछे जाने जैसा होगा, लेकिन इसको किसी एक भाषा में थोपने को कहीं से उचित नहीं ठहराया जा सकता, क्या एक बहुभाषिक समाज को डिजिटलीकरण की सुविधाओं को उनकी अपनी भाषा में उपलब्ध कराने के लिए प्रयास नहीं होने चाहिए, जो इंटरनेट आज समाज की आंतरिक प्रसंगों का एक अनिवार्य साधन बन रहा है, उसे डिजिटलीकरण की प्रक्रिया में सिर्फ बाजार के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता, जो भारतीय बहुसंख्यक उपभोक्ता आज वैश्विक बाजार के केंद्र में हैं, उन्हीं के आधार पर भारत को अपना स्थाई ढाँचा खड़ा करना चाहिए, इसके वर्तमान दौर सबसे भी उचित है, इसी अमेरिकी वर्चस्व को भी चुनौती मिल सकती है और प्रशासनिक सुधार एवं आंतरिक सुरक्षा के उद्देश्यों को वास्तविक अर्थों को प्राप्त किया जा सकता है और भारतीय भाषाई-सांस्कृतिक विविधता के प्रति आसन्न खतरे को भी कम किया जा सकता है।

संदर्भिका

- Castells, Manual (2009) The Rise of the Network Society: The Information Age: Economy, Society, and Culture Volume I; Wiley-Blackwell, River Street, Hoboken, NJ.
- Friedman, Thomas L. (2007) The World is Flat: A Brief History of World (4^{th} Edition); Picador/Farrar, Straus and Giroux, New York.
- Lyotard, Jean-Francois (1979) The Postmodern Condition : A Report on Knowledge (Translated by Geoff Bennington); Manchester University Press, UK.
- Sen, Sunanda (2007) Globalisation and Development; National Book Trust, New Delhi.
- जनसत्ता- 7 दिसंबर, 2014 एवं 25 अगस्त, 2015।
- त्रिपाठी, अरिमर्दन कुमार (2006) अर्थ-तंत्र आधारित हिंदी सूचना प्रत्यानयन प्रणाली (अप्रकाशित लघु शोध प्रबंध); मगाअंहिंविवि, वर्धा।
- त्रिपाठी, अरिमर्दन कुमार (2012) भाषा के समकालीन संदर्भ; साहित्य संगम, इलाहाबाद।
- सिंह, शैलेंद्र कुमार एवं अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी (2015) भाषा-पारिस्थितिकी : भारतीय एवं वैश्विक परिप्रेक्ष्य; टुडे एंड टुमारो पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

भाषा

भारत बनाम इंडिया

आज के परिप्रेक्ष्य में भारत और इंडिया का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो भारत नाम भारत की धरती का होने के कारण स्वाभाविक और औचित्यपूर्ण है, क्योंकि यह भारतीय संस्कृति और परंपरा से जुड़ा हुआ है। इंडिया में पाश्चात्य संस्कृति की गंध आती है।

प्रोफेसर कृष्ण कुमार गोस्वामी

1764, औट्रम लाइंस,

मुखर्जी नगर (किंग्जवे कैंप),

दिल्ली – 110009

(फोन: 0-9971553740)

भारतवर्ष के लिए इंडिया नाम भी प्रयुक्त किया जाता है। विदेशी लोग तो प्राय: इंडिया शब्द का ही प्रयोग करते हैं किंतु समझ में नहीं आता कि भारतीय लोग इंडिया का प्रयोग क्यों करते हैं? वास्तव में भारत के लिए इंडिया ही नहीं हिंदुस्तान भी प्रयुक्त होता है। प्राचीन काल में आर्यावर्त नाम भी इस्तेमाल होता था। भारत स्वदेशी और वास्तविक नाम है तो इंडिया शब्द 'हिंदिका' शब्द से बना है जो पश्चिम अथवा यूरोप से होता हुआ आया है। वस्तुत: यह आयातित शब्द है जिसमें विदेशी भाषा अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ी मानसिकता छाई हुई मिलती है। हिंदुस्तान फारस और अरब से हो कर आया है। मध्य काल में यह 'हिंदुस्तानी' नाम गंगा-जमुनी तहज़ीब का प्रतीक हो गया, भारत केवल भूखंड का नाम नहीं वरन इस देश की संस्कृति, समाज और परंपरा से जुड़ा हुआ है।

वास्तव में भारत नाम का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद में पुरू, यदु, तुरवश, द्रुहयु और अनु पाँच मुख्य आर्यजन के नाम आते हैं। इनमें पुरुओं की तीन शाखाएँ हुईं – भारत, तृत्सु और कुशिक। इन्हीं भरत राजाओं की वजह से भारत नाम पड़ा। इनमें दिवोदास और उसका पुत्र सुदास ऋग्वैदिक काल के प्रसिद्ध राजा हुए जिन्होंने जनपदों के छोटे-छोटे राजाओं या राजकों को संगठित करने का कार्य किया। इसी प्रकार शकुंतला और राजा दुष्यंत के पुत्र भरत का नाम भी जोड़ा जाता है। इस तरह 'भारतों' के नाम से भारत नाम पड़ा। ऋग्वेद के प्राचीनतम ऋषि विश्वामित्र अपनी एक ऋचा में इंद्र से प्रार्थना करते हैं –

य इमे रोदसी उभे अहभिन्द्रम तुष्टव:।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रहमेदं भारतं जनं।। (3.53.12)

अर्थात हे कुशिक प्रभो, ये जो दोनों आकाश और पृथ्वी हैं, इनके धारक इंद्र की मैंने स्तुति की है। स्तोता विश्वामित्र का यह स्तोत्र भारतजन की रक्षा करता है।

प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में 'सप्तसिंधु' नाम भी कई बार आया है। इसका प्रयोग क्षेत्र-विस्तार के संदर्भ में हुआ है। यह अनेक जनपदों का मिला-जुला नाम है जिसका भूभाग गंगा से ले कर सिंधु नदी घाटी और उत्तर में हिमालय से ले कर दक्षिण में राजस्थान तथा गुजरात तक फैला हुआ है। ऋग्वेद में दो ऋचाओं (10.75.5.6) में उन्नीस नदियों का उल्लेख मिलता है जिनसे इस क्षेत्र की सिंचाई होती थी। एक ऋचा (1.35.8) में सोने की आँखों वाले सविता देव *(हिरण्याक्ष: सविता देव:)* को सप्तसिंधु की संज्ञा दी गई है। यही सप्तसिंधु देश का पर्याय है, किंतु भारत तो कश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से मिज़ोरम तक फैला हुआ है। हमारी पहचान तो भारतीयता के आधार पर है। इसी प्रकार आदि काल में 'राष्ट्र' और 'देश' अर्थात भारत एक ही पर्याय के रूप में प्रयुक्त होते थे। ऋग्वेद में ही राष्ट्र शब्द भारत के संदर्भ में मिलता है – *त्वत राष्ट्र माँ आधी भ्रंशत (10.173.1)*। इस पूरी ऋचा की व्याख्या की जाए तो यह भाव मिलता है - हे राजन! हमारे राष्ट्र का तुम्हें स्वामी बनाया गया है। तुम हमारे राजा हो। तुम नीति, अचल और स्थिर हो कर रहो। सारी प्रजा तुम्हें चाहे। तुमसे राष्ट्र नष्ट न हो पावे। इस प्रकार भारत को कई नामों से अभिहित किया गया है, लेकिन भारत का प्रयोग ही अतीतकालीन, प्राकृतिक और स्वाभाविक है।

आज के परिप्रेक्ष्य में भारत और इंडिया का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो भारत नाम भारत की धरती का होने के कारण स्वाभाविक और औचित्यपूर्ण है, क्योंकि यह भारतीय संस्कृति और परंपरा से जुड़ा हुआ है। इंडिया में पाश्चात्य संस्कृति की गंध आती है। भारत राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद के मंत्र की पूजा करता है जबकि इंडिया की नज़र में राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता एक पुराणपंथी अवधारणा है। यह राष्ट्रवाद को पंथनिरपेक्ष अर्थात सेकुलर नहीं मानता और इसी कारण राष्ट्रवाद को प्रगतिशील भी नहीं मानता। भारत स्वतंत्रता का प्रतीक है तो इंडिया गुलामी

का। भारत में देश की अखंडता और एकात्मकता के बीज अंकुरित हैं जबकि इंडिया में विभाजन की जड़ों को पकड़ने की कोशिश होती है। भारतवासियों के लिए भारत उनकी माता है और वे अपने को उसका पुत्र मानते हुए उसका नमन करते हैं – पृथिव्या पुत्रोह, जबकि इंडिया हमारे भीतर संबंधों में परायापन की भावना पैदा करता है। भारत आर्य, द्रविड़, नाग, यक्ष, किन्नर, किरात, मंगोल, मुस्लिम, ईसाई, पारसी आदि अनेक जातियों को अपने सीने से चिपका कर उन्हें स्नेह, प्रेम और वात्सल्य की छाया देता है और इंडिया एवं हिंदुस्तान इन जातियों को अलग-अलग करने के लिए उकसाता है। भारत हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख आदि मतों को एक ही वृक्ष की शाखाएँ मानता है जबकि इंडिया इन्हें अलग-अलग समुदाय और उससे भी आगे बढ़ कर उन्हें संप्रदाय मानता है। भारत हमें अहिंसा पर विश्वास करने और उसका अनुगमन करने का पाठ पढ़ाता है जबकि इंडिया हिंसा की ओर धकेलता है। भारत ऋषि-मुनियों का देश लगता है जबकि इंडिया विलासियों और हिप्पियों का देश लगता है। भारत हमें साधना की ओर प्रोत्साहित करता है तो इंडिया साधनों के पीछे पड़ा रहता है। भारत सौहार्द्र, मैत्री, त्याग और वसुधेव कुटुंबकम का पाठ सिखाता है जबकि इंडिया इनसे हमें दूर रखने का प्रयास करता है। भारतीय दर्शन, भारतीय संस्कृति, भारतीय परंपरा, भारतीय साहित्य, भारतीय जीवन, भारतीय पुराण और इतिहास, भारत की विकासशीलता आदि भारत की अस्मिता और पहचान है जबकि इंडिया इन सबको अपने भीतर समेट नहीं पाता। एक अन्य बात उल्लेखनीय है कि सत्यमेव जयते हमारे देश भारत का प्रतीक वाक्य है जो मुंडक उपनिषद से उद्धृत है और यह वाक्य भारतीय विचारधारा को ही उद्घाटित करता है। भारत पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों की पूजा करता है, इसीलिए वह गाय और तुलसी को माता की पदवी देता है। वह गाय की रक्षा करता है जबकि इंडिया उसके भक्षण के लिए लालायित रहता है। भारत गांवों के अतिरिक्त शहरों में भी निवास करता है जबकि इंडिया केवल शहरों में रहता है। भारत अमीरों और गरीबों को समान नज़र से देखता है जबकि इंडिया अमीरों को ही निहारा करता है। भारत भारतीय वस्त्र, खान-पान और जीवन-शैली की पहचान है और इंडिया विदेशी वस्त्र, खान-पान और जीवन-शैली को अपनाने में अपनी शान समझता है। भारत अपनी भाषा हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं को अपने भीतर आत्मसात किए हुए है जबकि इंडिया अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ियत के गीत गाता रहता है।

भारत के विकास और आधुनिकीकरण के लिए इधर नई-नई परियोजनाएं बनाई जा रही हैं और उन्हें मेक इन इंडिया, स्किल इंडिया, स्टार्ट-अप इंडिया, डिजिटल इंडिया आदि अंग्रेज़ी के जोरदार नारों से सुसज्जित किया जा रहा है। अंग्रेजी में दिए गए इन नारों से इंडिया के विकसित और आधुनिक होने की आशा तो है लेकिन यह पश्चिमीकरण, औद्योगिकीकरण और शहरीकरण से अवश्य प्रभावित होंगे। ऐसे इंडिया में विलासिता, भौतिकता, स्वार्थपरकता और परायापन के साम्राज्य की भी संभावना है। साथ-साथ भारतीयता, आध्यात्मिकता, अपनापन और सांस्कृतिक चेतना के दर्शन न होने की पूरी-पूरी आशंका है तथा ग्रामीण जीवन के प्रति संवेदनहीनता के संकेत भी मिल सकते हैं। हिन्दी अथवा भारतीय भाषाओं में ये नारे हमारी मानसिकता में परिवर्तन लाने में सहायक हो सकते है जो भारत को विकसित और आधुनिक राष्ट्र बनाने में सहायक हो सकते हैं।

अत: भारत को भारत ही रहने दो, इंडिया नहीं। भारत नाम में ही महानता है और यही हमारी पहचान है। यही हमारी अस्मिता है। जय भारत।

RESEARCH

शोध

जनपद भिण्ड (म0प्र0) में सिंचाई सुविधाओं का विकास एवं नियोजन : एक भौगोलिक विश्लेषण

शोध – सार

सिंचाई, मानवीय प्रयत्नों से विविध शस्यों एवं शस्योत्पादन हेतु प्रस्तुत क्षेत्रों को जल उपलब्ध कराने की व्यवस्था है, जिसकी अनुपस्थिति में कृषि विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है। विकसित कृषि वर्तमान समय की अनिवार्यता है, जिसके बिना विविध मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव नहीं है। प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र 'जनपद भिण्ड' (म0प्र0) में कृषि विकास की अपार सम्भावनायें हैं, जिस हेतु यहाँ सर्वप्रथम सुदृढ़ एवं सशक्त सिंचाई व्यवस्था की महती आवश्यकता है। समुचित जल प्रबन्धन को अपनाकर, सिंचाई सम्बन्धी विविध आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव है, जो विविध पक्षीय विकास को एक सुदृढ़ आधार प्रदान करेगी।

विशिष्ट शब्द : कृषि विकास, सिंचाई, कृषि वैविध्यकरण, कृषि गहनता।

डॉ0 पुष्पहास पाण्डेय

पी–एच.डी.–नेट

सहायक प्राध्यापक, (भूगोल)

अनुदानित महाविद्यालय

सम्बद्ध छ0 शा0 म0

विश्वविद्यालय–कानपुर

&

शिवम् वर्मा

नेट–जे.आर.एफ.

शोध छात्र,

(भूगोल)–जीवाजी

विश्वविद्यालय, ग्वालियर

प्रस्तावना :

कृषि आधारित अर्थव्यवस्था वाले राष्ट्रों जैसे भारत में कृषि विकास एक अनिवार्यता है, जिसके बिना देश का विकास सम्भव नहीं है। भारत में न केवल खाद्यान्न व चारा आपूर्ति हेतु कृषि पर निर्भरता है, अपितु औद्योगिक कच्चे – माल की आपूर्ति भी कृषि से सुनिश्चित होती है। अतः भारत के सर्वांगीण विकास में कृषि की महत्वपूर्ण प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष भूमिका है, जिसके विकास हेतु विभिन्न कृषिगत निवेशों के साथ – साथ सिंचाई की भी आवश्यकता है। कृषिगत कियाकलापों में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में सिंचाई की अनिवार्यता है। सिंचाई की सहायता से न केवल कृषि उत्पादनों में अभिवृद्धि सुनिश्चित होती है, अपितु कृषि वैविध्यकरण, कृषि गहनता आदि की स्थिति भी सम्भव हो सकती है।

कृषि सम्बन्धित विभिन्न सकारात्मक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप, कृषिगत उत्पादनों की अभिवृद्धि के साथ – साथ कृषकों की आय में बढ़ोत्तरी सुनिश्चित होगी। भारत के सन्दर्भ में इस प्रकार न केवल कृषि उत्पादन बढ़ेगा, अपितु राष्ट्रीय आय भी बढ़ेगी। सिंचाई के समुचित विकास से कृषि विकास के साथ ही साथ कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में भी सकारात्मक परिवर्तन होंगे।

अध्ययन क्षेत्र :

प्रस्तावित अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) राज्य की उत्तरी सीमा पर 25° 55′ उत्तरी अक्षांश से 26° 48′ उत्तरी अंक्षाश एवं 78° 12′ पूर्वी देशान्तर से 79° 05′ पूर्वी

देशान्तर के मध्य स्थित है। भिण्ड जनपद चम्बल सम्भाग के अन्तर्गत आता है। सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र की ऊँचाई 152 मीटर से 183 मीटर तक है। जनपद भिण्ड का क्षेत्रफल 4459 वर्ग किलोमीटर एवं जनसंख्या (2001 के अनुसार) 14,26,951 व्यक्ति हैं। जनपद भिण्ड में क्रमशः 7 तहसीलें – अटेर, भिण्ड, मेहगाँव, गोहद, रौन, मिहोना एवं लहार हैं। जनपद भिण्ड में कुल 933 ग्राम हैं।

जनपद भिण्ड में औसत वार्षिक वर्षा 759.2 मि0मी0 है। जबकि वार्षिक तापमान 30° से0 से 36° से0 के मध्य रहता है।

जनपद भिण्ड (म0प्र0) में समतल, बीहड़ एवं कठोर पथरीली भूमि मिलती है। भिण्ड जनपद की लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या कृषि में संलग्न है।

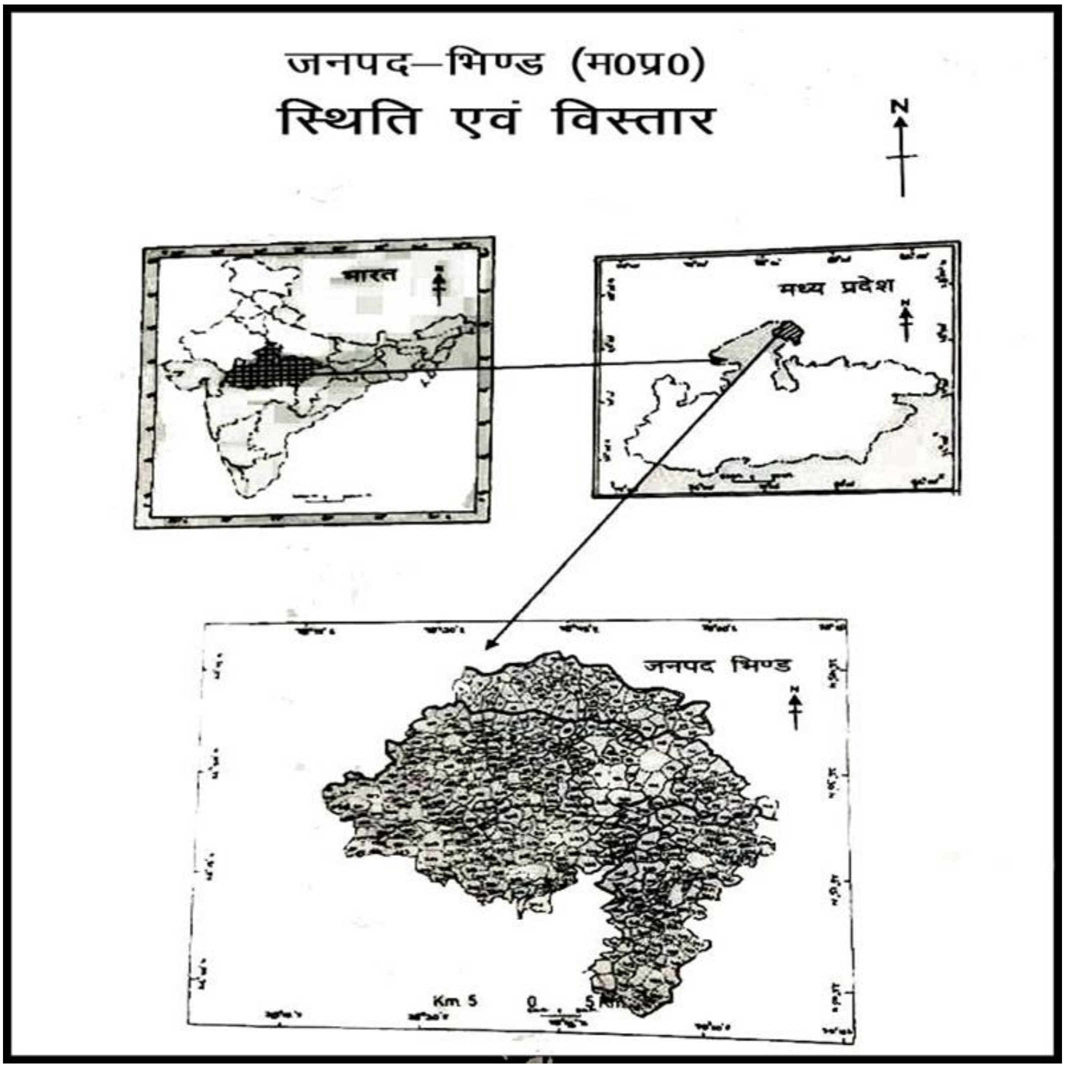

चित्र (1.1)

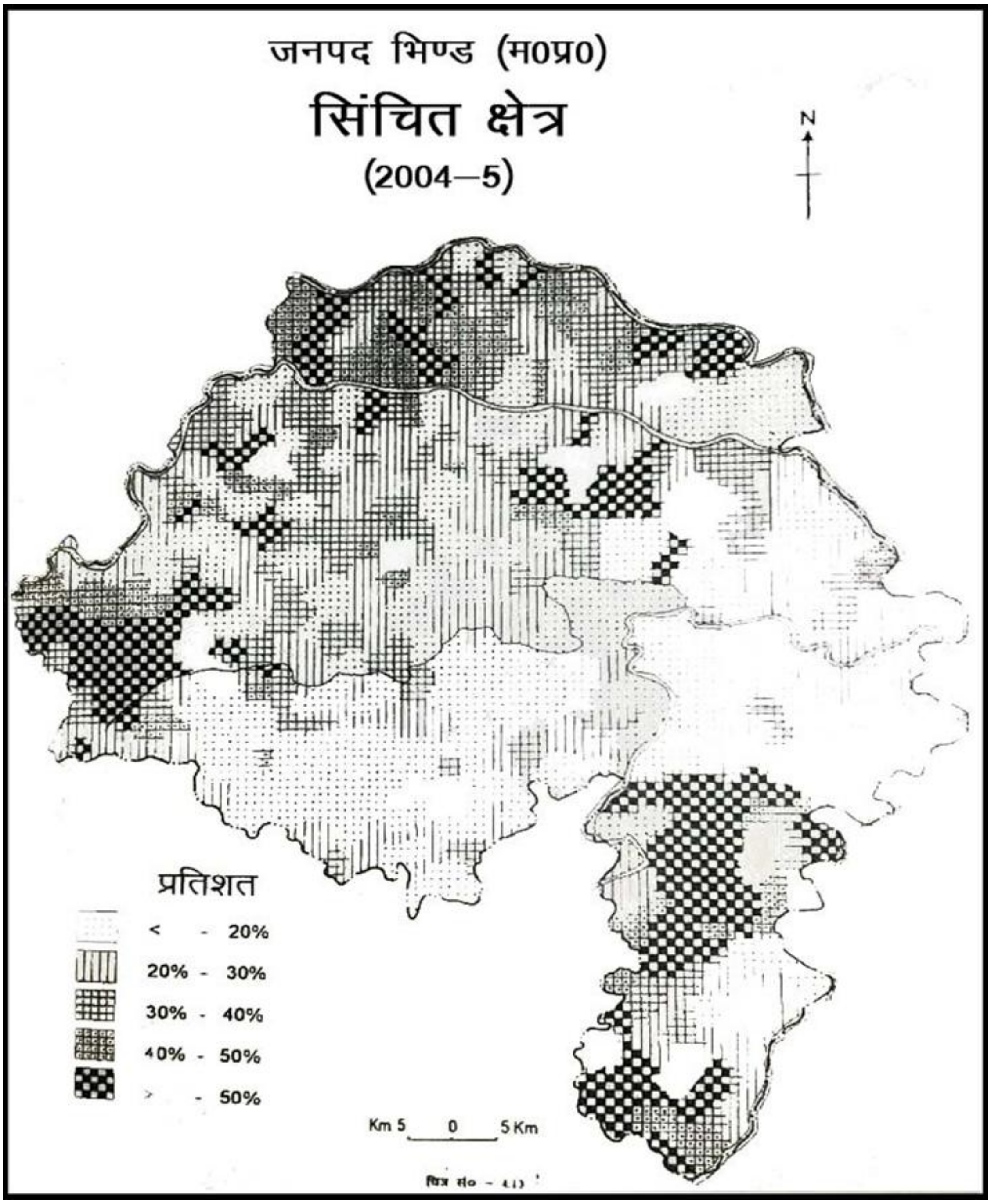

चित्र (1.2)

परिकल्पना निर्माण :

- सिंचाई कृषि विकास का आधार है।
- सिंचाई के साधन उपलब्ध जल संसाधन पर निर्भर करते हैं।
- प्रदेश विकास, कृषि आधुनिकीकरण पर निर्भर करता है, मुख्यतः कृषि आधारित अर्थव्यवस्था वाले क्षेत्रों में।

उद्देश्य एवं विधितन्त्र :

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य अध्ययन क्षेत्र में कृषि विकास हेतु, सिंचाई सुविधाओं की वर्तमान स्थिति को ज्ञात कर मूल्यांकन करने के साथ – साथ क्षेत्रीय सिंचाई समस्याओं का अध्ययन करके, उनके समाधान हेतु योजना निर्माण है। प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्राथमिक व द्वितीयक आँकड़ों का संकलन कर, उनका विश्लेषण, सारणीकरण व प्रस्तुतिकरण सुनिश्चित किया जायेगा। यथोचित, मानचित्र, आरेख आदि का भी प्रयोग किया जायेगा।

किसी भी सिंचाई पद्धति एवं प्राविधिकीय क्षमता हेतु उपलब्ध जल स्त्रोतों, खेतों से दूरी, जलोत्थान यन्त्रों की क्षमता तथा सिंचाई पद्धति एवं उसकी प्राविधि द्वारा सुनिश्चित होती है। इसलिये सामयिक एवं उचित मात्रा में जल की उपलब्धता में उपलब्ध पद्धति का सर्वाधिक महत्व होता है। परम्परागत सिंचाई प्राविधियों द्वारा एक हेक्टेअर से कम क्षेत्र की सिंचाई, रेहट द्वारा मात्र चार हेक्टेअर क्षेत्र की सिंचाई ही हो पाती थी, किन्तु सन् 1960 के बाद अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) में जलोत्थान हेतु नवीन प्राविधीय पम्पिंगसेट का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

वर्तमान में जनपद भिण्ड (म0प्र0) में जलोत्थान हेतु पम्पिंगसेट डीजल एवं विद्युत चालित नलकूप, स्प्रिंकलर पद्धति तथा सौर शक्ति द्वारा चालित नलकूपों से सिंचाई की जाती है। अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) में वर्तमान में 98,982.01 हेक्टेअर कृषि भूमि सिंचाई के अन्तर्गत है, जो सकल कृषित क्षेत्रफल का 31.20% है।

विकासखण्ड सिंचित क्षेत्रफल के स्थानिक वितरण का अध्ययन करने पर भी असमानता परिलक्षित होती है। अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक सिंचित क्षेत्र विकासखण्ड लहार में 24632.11 हेक्टेअर (52.03%) है। इसके विपरीत विकास खण्ड मेंहगाँव में 19285.11 हेक्टअर (46.74%), विकासखण्ड अटेर में 16453.20 हेक्टेअर (32.72%) विकासखण्ड गोहद में 23660.87 हेक्टअर (30.66%), विकासखण्ड भिण्ड में 10556.02 हेक्टअर (29.12%) तथा सबसे कम सिंचित क्षेत्र विकासखण्ड रौन में 4394.70 हेक्टेअर (14.72%) देखनें को मिलता है। तालिका में अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) में सिंचित क्षेत्रफल का विवरण दिया गया है।

जनपद भिण्ड (म0प्र0) में सिंचित क्षेत्र का विवरण:

क्रमांक	विकास खण्ड का नाम	सकल कृषित क्षेत्रफल (हेक्टयर में)	सकल सिंचित क्षेत्रफल (हेक्टयर में)	प्रतिशत
1	अटेर	58536.98	17425.49	29.76
2	भिण्ड	41109.41	10198.32	24.80
3	मेहगाँव	84076.03	19384.56	23.05
4	गोहद	85780.26	23661.00	27.58
5	रौन	32467.52	4414.18	13.59
6	लहार	59757.87	6147.68	10.28
योग जनपद भिण्ड		361728.07	81229.23	22.46

विकासखण्ड लहार में सकल सिंचित क्षेत्रफल अधिक होने का प्रमुख कारण भाण्डेर नहर की शाखाओं एवं उपशाखाओं का विस्तार, विकासखण्ड की पश्चिमी सीमा में प्रवाहित सिन्ध नदी तथा पूर्वी सीमा पर प्रवाहित पहूज नदी द्वारा जल उपलब्धता का होना है। इसके अतिरिक्त अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी में दबोह एवं आलमपुर में जल तल का ऊँचा होना है। जल तल उच्च होने के कारण नलकूप हेतु उपयुक्त परिस्थितियाँ इत्यादि कारक उत्तरदायी है।

इसके विपरीत अध्ययन क्षेत्र के विकासखण्ड रौन में सिंचत क्षेत्र कम होने का कारण, नदियों के आस – पास भूमि – कटाव का अधिक होना, भुमि में आर्द्रता की कमी, जलतल नीचे होना आदि हैं। इस विकासखण्ड के कृषकों में कृषि नवाचारों के प्रति उदासीनता आदि उत्तरदायी कारक हैं। ग्रामपंचायतस्तरीय सिंचाई के स्थानिक वितरण के विश्लेषण करने में अनेक उल्लेखनीय तथ्य उजागर हुये हैं। अध्ययन क्षेत्र विकासखण्ड लहार में 34 (52.30%) ग्रामपंचायतें, विकासखण्ड गोहद की 19 (21.59%) ग्रामपंचायतें, विकासखण्ड भिण्ड की 14 (22.58%) ग्रामपंचायतें, विकासखण्ड अटेर की 9 (10.34%) ग्रामपंचायतें तथा सबसे कम विकासखण्ड मेहगाँव की 5 (4.80%) ग्रामपंचायतें ऐसी हैं, जहाँ सकल कृषित क्षेत्रफल के 50% से अधिक भाग सिंचित क्षेत्रफल के अन्तर्गत है।

इसके विपरीत अध्ययन क्षेत्र की 144 (32.21%) ग्रामपंचायतें ऐसी हैं, जहाँ 20% से कम सिंचित क्षेत्रफल के अन्तर्गत सर्वाधिक विकासखण्ड रौन की 31 (75.61%) ग्रामपंचायतें सम्मिलित हैं। इसके बाद विकासखण्ड गोहद की 37 (42.04%) ग्रामपंचायतें, विकासखण्ड मेहगाँव की 38 (36.54%) ग्रामपंचायतें, विकासखण्ड भिण्ड की 21 (33.87%) ग्रामपंचायतें, विकासखण्ड अटेर की 13 (14.94%) तथा सबसे कम विकासखण्ड लहार की 4 (6.15%) ग्रामपंचायतें इस वर्ग के अन्तर्गत सम्मिलित हैं। विकासखण्ड रौन की ग्रामपंचायतों में 20% से कम सिंचित क्षेत्रफल होने का कारण भूमि कटाव, भूमिगत जल की अत्यधिक अनुपलब्धता एवं अवसंरचनात्मक कारकों की अनुपलब्धता, कृषकों की उदासीनता आदि कारक उत्तरदायी हैं। इसके विपरीत विकासखण्ड गोहद में भी नहरों में जल का अभाव भूमिगत जल का अति निम्न होना, अवसंरचनात्मक कारकों की अनुपलब्धता कृषकों की कृषि नवाचारों के प्रति अज्ञानता एवं रूढ़िवादिता आदि कारक उत्तरदायी हैं।

तालिका में अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) मे विकासखण्डवार सिंचित क्षेत्र एवं प्रतिशत को प्रदर्शित किया गया है। मानचित्र क्रमांक 1.2 में जनपद भिण्ड (म0प्र0) के सिंचित क्षेत्र को प्रदर्शित किया गया है।

सिंचाई मानचित्र से स्पष्ट होता है, कि अध्ययन क्षेत्र के दक्षिण अवस्थित विकासखण्ड लहार तथा पश्चिम में विकासखण्ड गोहद में सिंचाई का प्रतिशत अधिक है। इसके विपरीत अध्ययन क्षेत्र के उत्तर में लघुखण्डों में 50% से अधिक सिंचित क्षेत्र देखने को मिलते हैं।

सामान्यतः सिंचित क्षेत्र मानचित्र पर द्रष्टि डालने पर स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में 20% से कम सिंचित क्षेत्रफल अधिक है। अध्ययन क्षेत्र 144 (32.21%) ग्रामपंचायतें ऐसी हैं, जहाँ सिंचित क्षेत्रफल 20% से कम है। 106 (23.71%) ग्रामपंचायतें ऐसी हैं, जिनमें सिंचित क्षेत्रफल 20% से 30% के मध्य 68 (15.21%) ग्रामपंचायतों में सिंचित क्षेत्रफल 30% से 40% तथा 47 (10.51%) ग्रामपंचायतों में 40% से 50%, सिंचित क्षेत्रफल एवं शेष 82 (18.34%) ग्रामपंचायतें ऐसी हैं। जिनमें सिंचित क्षेत्रफल 50% से अधिक है।

अध्ययन क्षेत्र की जिन ग्रामपंचायतों में सिंचित क्षेत्र 50% से अधिक है, उन ग्रामपंचायतों में सिंचाई हेतु सुगमता से जल की उपलब्धता तथा कृषकों की जागरूकता एवं नगरों की समीपता, परिवहन मार्गों की सुगमता तथा सामाजिक – आर्थिक कारक इत्यादि महत्वपूर्ण हैं।

अन्ततः प्रस्तुत शोध पत्र में सिंचाई सुविधाओं का मूल्यांकन जनपद भिण्ड (म0प्र0) के सन्दर्भ में किया गया है।

सिंचाई सुविधाओं पर कृषि विकास आधारित है, उस पर समस्त अध्ययन क्षेत्र का विकास निर्भर है। अतः इस ओर अत्याधिक ध्यानाकर्षण की आवश्यकता है, इस हेतु निम्नलिखित कार्य आवश्यक हैं------

- सिंचाई विकास हेतु कृषकों को सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान की जाये।
- उपलब्ध जल संसाधन का समुचित उपयोग किया जाये।
- सिंचाई हेतु वर्षा जल का संरक्षण किया जाये।
- सिंचाई विकास हेतु कृषकों को प्रशिक्षण प्रदान किया जाये।
- नवीन सिंचाई साधनों का उपयोग किया जाये आदि।

अध्ययन क्षेत्र में उपर्युक्त प्रयासों से न केवल सिंचाई सुविधाओं का विकास सुनिश्चित होगा, अपितु कृषि विकास का भी मार्ग प्रशस्त होगा, कृषकों का सामाजिक – आर्थिक विकास भी गति प्राप्त करेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Hand book of District Bhind (M.P.)
2. तिवारी, आर0 सी0 (2000) : कृषि भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
3. सिंह, ब्रजभूषण (1988) : कृषि भूगोल, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
4. पाण्डेय, जे0एन0 (1998) : कृषि भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन गोरखपुर
5. Singh, S. (1983) : Regionalisation for rural development and planning.

RESEARCH

शोध

Attitude towards information and communication technology of secondary school teachers with respect to their age

Abstract

The aim of the study is to examine the attitude of secondary school teacherstowards the use of ICT in education. A sample of 50 secondary school teachers of Malout (Punjab) was assessed for their attitude towards the use to ICTusingAttitude Scale towards Information Communication Technology by Nasreen Fatima Islahi. The result of this study showed that there is significant difference in secondary school teacher's attitude towards the use of ICT in education with respect to their age. The findings have implications for the teachers to equip themselves through ICT literacy trainings. Government has to provide infrastructure facilities for use of computers in classrooms. Thus the attitude of secondary school teachers towards the use of computers in education can be improved.

Dr. Sunita Arya

Kalgidhar Institute of Higher Education

Kingra, Malout (Punjab)

Introduction

We are residing in a continuously evolving digital world. ICT has an impact on nearly every part of our lives - from working to socializing, studying to taking part in. The digital age has converted the way young people communicate, network, seek support, access information and be trained. We have to recognize that young people are actually an internet populace and access is by way of a style of means significant of computer systems, television and cell phones technology turns into more and more embedded in our tradition, we need to provide our learners with significant and modern day experiences that enable them to effectively engage with technology and put together them for lifestyles after school. It's generally recognized that newcomers are inspired and purposefully engaged within the finding out method when ideas and advantage are underpinned with technological know-how and sound pedagogy. Education has been benefited through computer technology in more than a few approaches and at various Stages. From each the sociological and the economics a point of view, pc technology has made have an impact on instructing and learning. A number of institutions within the developed nations are providing guides through computer technologies similar to interactive multimedia, computer conferencing and the internet. So as to manage with the technological revolution in the educating-finding out system of the developed countries it is necessary to include this technological advancement within the Indian lecture room.In India

there is serious need for increasing the learning abilities of the students with the help of computers. The teacher is key to effective implementation of the use of computers in the educational system. Teachers have tremendous potential to transmit beliefs and values of students. So, the teacher's attitude towards the use computers results upon the computers usage in school. Attitude is defined by Ajzen (2005) as a disposition to respond favorably or unfavorably to on object, person, institution or event . In this theory of planned behavior Ajzen (1988, 2005) linked attitude and behavior through the description of three types of belief system that guide human behavior namely behavioral beliefs, normative beliefs and control belief. Attitudes are key factors in whether teachers accept computer as a teaching tool in their teaching practice. A number of studies were carried out to determine teacher's attitude towards use of computer. Harrison and Rainer (1992) conducted their research using data compiled from a 1990 survey of 776 knowledge and information workers from large university in the Southern United States. They found that participants with negative computer attitude were less skilled in computer use and were therefore less likely to accept computers use and adapt to technology those with positive attitude. Albirni (2004) conducted a study to investigate the attitude of EFL teachers in education. He found that teachers have positive attitude towards technology use in education Hountz and Gupta (2001) found that male and female had rated themselves on their ability to use the computer is significantly in different ways.Other studies have suggested that the masculine image of the computer has deterredFemales from benefiting from the technology and this has made them less confident orMore anxious (Culley 1988) resulting in females holding more negative attitudes toComputers thanmales(Cambell 1990). The research on gender and composting has after reported, though not conclusivelythose males have more experience and make more use of computers. (Brosnath & Lee, 1998, Balka and Smith2000).A Number of studies were carried out to determine teacher's attitude towardsthe use of ICT in education with respect of their gender. But the investigator hasnot found any study on teacher's attitude towards the use of ICT in educationwith respect to their age group. So the investigator aimed at assessing the teacher'sAttitude towards the use of ICT in education with respect to their age. In thePresent study the investigator has taken the teachers of below 35 years and above 35Years to study the use of computers in education. Because both age group of teachersplay dual role in education activity. They play the role of teaching as well as the role ofguidingstudents.

Objective

1.To study the difference in attitude of secondary school teachers towards the use of Information communication Technology with respect to their age.

Hypotheses:

1There is no significance difference in attitude of secondary school teachers towards the use of information communication Technology with respect to their age.

Delimitation of study

1. The study was considered only new ICT such as computer technologies and Internet.

2. The present study was confined only to the secondary school teachers teaching in secondary schools, affiliated to CBSE &PSEB only.

3. Private & government schools located in Malout(Punjab) was selected for the study.

4. The present study was conducted only to the sample of 50 secondary teachers.

Methodology:

The present study is a descriptive survey undertaken to study the attitude of Secondary school teachers towards the use of ICT with respect to their age.

Sample

The sample of the study consisted of 50 secondary school teachers of Malout below 35 year(25) and above 35 years (25)of age was taken.

Tool Used

For the present study theAttitude Scale towards Information Communication Technology by Nasreen Fatima Islahi. Used.

Analysis and discussions

Attitude of secondary school teachers of below and above 35 years towards the use of ICT in education.

Table – 1

Variable	N	Mean	S.D	t-Value	Result
Attitude of secondary school teachers Below 35 years	25	36.7	4.8	5.18	Significant 0.05 level
Attitude of secondary school teachers Above 35 years	25	29.1	6.6		

Table-1 Reveals that the mean value of teacher attitude scores of below and above 35 year age secondary school teachers has been found 36.7 and 29.1 respectively and the standard deviations of below and above secondary school teachers have been found 4.8 and 6.6 respectively. The obtain t-value is 5.18.This study reveals that there is significant difference in attitude of secondary school

teachers below and above 35 years age towards the use of ICT inEducation. Teachers below 35 years have more positive attitude than teachers of above35 years and thus they use computers in education more effectively.

Educational Implications

Introduction ICT in of curriculum school must be done mandatory. It willencourage teaching learning activity. Government must provide computers or lap tops to the teachers any cost.

References

Albirini A. A (2004) An exploration of the factors associated with the attitudes of high school EFI teachers in Syria towards information and communication technology. Unpublished thesis the Ohio State University.

Ajzen, I. (1988). Attitudes, personality, and behavior. Chicago: Dorsey Press.

Anna Neena George (2012) ICT in education http://www.teachers of india org/en/article/ict education.

Balka T. & Simth, C. H (2000). Exploring the extent of ICT adoption among Secondary school teacher In Malaysia. *International Journal of Computing and ICT Research*.

Naser Jamil Al-Zaidiyeen (2010) Teachers attitude and levels of technology use in classrooms. The case of Jordun School International education studies vol 3 No: 2 May 2010

Mikre F(2011) The roles of information communication technologies in education: Review article with emphasis to the computer and internet. The Ethiopian Journal of Education and science, 6(2) 109-126.

Rainer, R. K., & Miller, M. D. (1992). An assessment of the psychometric properties of the computer attitude scale. Computers in Human Behavior, 12, 93–105.

Webb, M. E. (2005). Affordances of ICT in science learning: Implications Forintegra edagogy. *International Journal of Science Education*, 27, 6, 705-735

TRANSFRAME

WWW.TRANSFRAME.IN